

# हृदय का कोना

लेखक

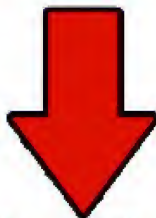
श्री अनन्तप्रसाद विद्यार्थी बी० ए०

**Collect more e-books**



A lot collection of Hindi e-books

Please click the link below-



**[www.ebookspdf.in](http://www.ebookspdf.in)**

# हृदय का कोना

[टूटे हुए हृदयों के अंधकारपूर्ण कोनों को मिलाकर जीवन  
को प्रकाशपूर्ण बनानेवाला रोमांचक उपन्यास]

लेखक

श्री अनन्तप्रसाद विद्यार्थी बी० ए०

प्रकाशक

हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण ]

१९४३

[ मूल्य १॥ ]

प्रकाशक—

गयाप्रसाद तिवारी, बी. काम.

अध्यक्ष हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स,

शाहगंज, इलाहाबाद ।



मुद्रक—

गयाप्रसाद तिवारी, बी. काम.

नारायण प्रेस, नारायण बिल्डिंग्स,

शाहगंज, इलाहाबाद ।



## प्रकाशकीय—

बहुत दिनों से मेरी यह उत्कण्ठा थी कि कुछ ऐसे उपन्यास हिन्दी में प्रकाशित हों, जो उन अभावों की पूर्ति करें, जिनकी ओर अभी तक, न तो हिन्दी के सम्भ्रान्त प्रकाशकों की दृष्टि गई—न अधिकारी उपन्यासकारों का ही ध्यान गया है। दूसरी भाषाओं में जब मैं कोई उपन्यास देखता हूँ, तब मुझे एक चोट सी लगती है। मैं सोचता हूँ, क्यों इस ढंग का कोई उपन्यास हिन्दी में अब तक प्रकाशित नहीं हुआ ? मेरा अभिप्राय समाज की स्वयंविरोधी शक्तियों के घात-प्रतिघात और उसके फलस्वरूप समाज के आन्तरिक जीवन से है। मैं चाहता हूँ, हमारा कथा-साहित्य आज के सामाजिक जीवन का यथार्थ प्रतिबिम्ब हमारे समक्ष उपस्थित करनेवाला हो।

इस अवसर पर मैं हिन्दी के ख्यातिनामा उपन्यासकारों की अवमानना नहीं करना चाहता। मेरा यह अभिप्राय नहीं कि वे वस्तु-स्थिति से दूर हैं। मैं तो उपालम्भ इस बात का देना चाहता हूँ कि कुछ

अपवादों को छोड़कर आज हिन्दी के बाजार में जो कृतियाँ उपन्यास के नाम पर धड़ले के साथ आ रही हैं और खप रही हैं, क्या वे अपने पूरे अर्थों में उपन्यास होती हैं ? चरित्रचित्रण, घटनाक्रम, घात-प्रतिघात कुतूहल, संवाद और मनस्तत्व के निरूपण में क्या वे परिपक्व, पुष्ट, मर्यादित, मनोरम और गहन हैं ?

अस्तु, मन में एक साध—एक महान उद्देश्य—लेकर मैं इस क्षेत्र में एक प्रकाशक की हैसियत से आ रहा हूँ । उद्देश्य की दृष्टि से यह प्रथम कृति कहाँ तक सफल और समर्थ है, इसका निर्णय तो हिन्दी के अधिकारी विद्वान ही करेंगे । परन्तु इस अवसर पर, अपने उपन्यासप्रेमी पाठकों से मैं यह निवेदन अवश्य कर देना चाहता हूँ कि यदि उन्होंने इस महत् कार्य में मेरे साथ यथेष्ट सहयोग किया, तो वह दिन दूर नहीं है, जब हम अपने उद्देश्य को चरितार्थ कर दिखलायेंगे ।

दीपावली,  
संवत् २००० वि०,  
इलाहाबाद

}

गयाप्रसाद तिवारी

## भूमिका

‘हृदय का कोना’ एक आदर्शवादी रोमैंटिक उपन्यास है। रूप के आकर्षण और नवयौवन के जागरण का वर्णन इसमें सुन्दर और स्वाभाविक ढंग से किया गया है। नायिका प्रेमलता ‘नारी-स्वातन्त्र्य आंदोलन’ को अपने जीवन का ध्येय मानकर सार्वजनिक क्षेत्र में आती है। उपनायक कान्ति कुमार से वह मित्रता भी रखती है। परन्तु कार्यक्षेत्र के संपर्कों में आने पर भी चरित्र-सम्बन्धी कोई दुर्बलता उसमें प्रकट नहीं होती। और नायक निशीथ तो इस उपन्यास की एक बड़ी विशेषता है। चरित्र में तो वह महान है ही; रुचि, प्रकृति और मान्यताओं के व्यावहारिक संसार में भी वह अचल और दृढ़ रहता है। उपनायिका नयना के रूप-यौवन से वह आकृष्ट होता है; परन्तु अपनी और उसकी मर्यादा भंग नहीं होने देता। बिना दूर तक सोचे-समझे जो लोग अपने प्रियजनों के प्रति निराधार सन्देह, भ्रम और शंकाएँ पाल लेते हैं, ऐसे संशयालु, लघुत्व-भावनाग्रस्त और भावुक जनों के लिए तो वह एक चुनौती है। निश्चित मार्ग पर दृढ़ रहकर वह अपने कर्तव्य-

पालन में निरन्तर अग्रसर रहता है। भ्रम-निवारण के लिए कभी प्रियतमा तक को वह सफाई नहीं देता; क्योंकि उसका दृढ़ विश्वास है कि सत्य अद्वय है, कोई उसपर सदा के लिए धूल नहीं डाल सकता। समय आने पर एक-न-एक दिन वह स्वयं प्रकाशमान हो उठता है। और इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे उदात्तचरित्र का चित्रण और मनो-विश्लेषण करने में लेखक को सफलता मिली है।

इस प्रकार कई दृष्टियों से यह उपन्यास मुझे प्रिय लगा। इसके पात्र आज के समाज का प्रतिबिम्ब हमारे सामने रखते हैं। चरित्र में दुर्लभ न होकर वे यथेष्ट दृढ़ सिद्ध होते हैं। मानवी दुर्बलताओं के प्रवाह में सहसा वह नहीं जाते और आदर्श की रक्षा में वे आन्तरिक मोहों का त्याग साहस-पूर्वक करते हुए कथा-वस्तु के विकास में स्वाभाविक गति से साथ देते हैं। लेखक में एक प्रतिभाशाली उपन्यास-कार के अनेक गुण हैं, जिनका इस उपन्यास में यथेष्ट परिचय मिलता है। ऐसी सुन्दर रचना के लिए वे मेरी बधाई के पात्र हैं।

दारागंज, प्रयाग ।  
ता० ५—११—४३

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

हृदय का कोना

## [ १ ]

हाल खचाखच भरा था। सामने की सीटों पर लड़कियाँ बैठी हुई थीं। अध्यापक तथा सम्माननीय व्यक्ति मंच के निकट कुर्सियों पर बैठे हुए थे। वार्षिक गल्प-प्रतियोगिता विश्व-विद्यालय की अपनी विशेषता थी। सौ रुपये का नकद पुरस्कार प्रतिवर्ष हिन्दी-परिषद की ओर से सर्वश्रेष्ठ कहानी पर दिया जाता था। इसलिये इसमें प्रतियोगियों की संख्या भी बहुत अधिक रहती थी। इस वर्ष समापति का आसन हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक श्री अविनाश ने ग्रहण किया था। श्री अविनाश कहानी-लेखक होने के साथ ही साथ एक प्रतिभाशाली वक्ता भी हैं; उनकी कहानियों ने युवक समुदाय को अपना भक्त बना रखा है। यही कारण था कि हाल में कहीं तिल रखने को भी स्थान न था। प्रेमलता ने जिस समय हाल में प्रवेश किया प्रतियोगिता प्रारम्भ हो गई थी। दरवाज़े के पास पैर रखते ही उसने एक बार खचाखच भरे

हुए हाल की ओर देखा; कहीं भी तो बैठने का स्थान न था; जी में आया कि वह लौट जाय परन्तु उसी क्षण उसने देखा कि पहली सीट के कोने में उसकी सहपाठिनी श्रीमती अरुणा बैठी हैं। श्रीमती अरुणा प्रेमलता के संकट को जैसे समझ गई हों, तुरन्त ही थोड़ा खिसक गई; प्रेमलता जाकर उनके निकट बैठ गई। उसके कानों में शब्द छलक कर जैसे गिर गये हों—‘अपनी प्रियतमा की समाधि पर शाहंशाह नित्य जाता; अपने दामन में भरे हुए फूल कब्र के शिलाखण्ड पर बिखेर कर घुटने टेक कर बैठ जाता। उसकी आँखें किसी स्मृति के भार से बंद हो जातीं; दिल का दर्द उभर कर ऊपर आने का प्रयत्न करने लगता...’

प्रेमलता जैसे जग उठी हो; अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को उठा कर उसने मंच की ओर देखा। कोई विद्यार्थी अपनी गल्प पढ़ रहा था। आँखें आँखों से टकरा गईं। विद्यार्थी की श्रंखला टूट गई और प्रेमलता के कपोलों पर लज्जा ने जैसे अंगूरी शराब ढुलका दी हो। आँखें उसने नीची कर ली। उसके कानों में अब भी कुछ टूट्टे से शब्द घूम रहे थे। ‘अपनी प्रियतमा की समाधि पर शाहंशाह नित्य जाता; अपने दामन...’ प्रेमलता की विचार धारा चलती रही—कितना प्यार करता रहा होगा शाहंशाह अपनी उस प्रियतमा को! तभी तो नित्य—और एक वह है जिसे जीवन में प्यार तो किसी का मिला ही नहीं। वह शैशव के अंक में ही खेलती थी कि माँ की मृत्यु हो गई। आज भी जब कभी उसे माँ की स्मृति आ जाती है तो उसकी आँखें बरबस अपने मोती कपोलों की फिसल पर बिखेरने लगती हैं। कितना नीरस जीवन है उसका? क्या कभी उसका भी बादशाह होगा जो उसकी समाधि पर आँसू बिखेरा करेगा? कितनी भाग्यशालिनी थी शाहंशाह की वह प्रेमिका!

प्रेमलता अधिक भावुक हो रही थी। तभी एक बार सम्पूर्ण हाल तालियों की ध्वनि से मुखरित हो उठा। प्रेमलता की विचार धारा कूल से टकराई और बाह्य कोलाहल में खो गई। प्रेमलता ने देखा विद्यार्थी अपनी कहानी पढ़ कर चला गया है। वह उसी प्रकार जड़ बनी बैठी।

रही; बोली कुछ नहीं। श्रीमती अरुणा जैसे शान्त न रह सकी, प्रेमलता को सम्बोधित करके बोली—प्रेम, कहानी बड़ी सुन्दर थी।

‘हाँ, अच्छी थी।’ प्रेमलता ने उत्तर दिया; यद्यपि सुनी उसने पूरी कहानी न थी।

श्रीमती अरुणा को जैसे प्रेमलता के इस उत्तर से सन्तोष न हुआ और वे फिर बोलीं—अच्छी, मैं तो कहती हूँ मैंने आज तक ऐसी कहानी कहीं पढ़ी नहीं।

प्रेमलता मुस्कराई; वह जानती है कि श्रीमती अरुणा जब किसी की प्रशंसा करती है तो उसे आसमान पर चढ़ा देती हैं। इसीलिये उसने बात बदलने के उद्देश्य से पूछा—पर यह था कौन ?

श्रीमती अरुणा ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा फिर उत्तर दिया—कांतिकुमार है। यहीं अपने विश्वविद्यालय में एम० ए० में पढ़ता है।

कांतिकुमार ! प्रेमलता को स्मरण हो आया, अभी ‘सुषमा’ के पिछले अंक में ही तो उसकी एक कहानी छपी थी। कितनी सुन्दर थी ! प्रेमलता को सारे अंक में केवल वही एक कहानी पसन्द आई थी। प्रेमलता को दुःख हो रहा था कि उसने कांतिकुमार की कहानी सुनी क्यों नहीं। कितना भावुक वह लगता था; कहानी की भावधारा के साथ ही उसकी आवाज भी प्रवाहित हो रही थी; आँखों में एक विचित्र जादू था। और तभी प्रेमलता को आँखों का वह टकराना स्मरण हो आया। कितना सजग हो उठा था ! तुरन्त ही उसने आँखें नीची कर लीं थीं; पढ़ना क्षण भर के लिये जैसे वह भूल गया हो। फिर प्रेमलता ने देखा कि जब तक वह अपनी कहानी पढ़ता रहा उसने आँखें उठा कर सामने की ओर नहीं देखा। हाँ, कहानी समाप्त कर करतलध्वनि के तुमुलनाद को चीरता हुआ जब वह अपने स्थान की ओर जा रहा था तब प्रेमलता ने देखा था कि उसके बड़े-बड़े नेत्र जैसे अपनी किमी खोई निधि के लिये व्याकुल से थे; कुछ-कुछ भूली-भूली-सी वे आँखें प्रेमलता



पर आ टिकीं। और दूसरे ही क्षण प्रेमलता के निकट से होता हुआ वह पीछे की सीट पर चला गया था।

प्रेमलता का हृदय भावुक हो उठा था। उसके बाद अन्य कई विद्यार्थियों ने अपनी कहानियां पढ़ी परन्तु किसी की कहानी वह सुन न सकी। एक बार तो किसी का नाम पुकारा गया; उसके आने में विलम्ब हुआ तो उसने पीछे की ओर मुंह फिरा कर देखा। शरीर में एक कम्पन, एक सिहरन सी अनुभव कर वह फिर सामने की ओर मुंह कर के बैठ गई। कांतिकुमार पीछे की तीसरी सीट पर ठीक प्रेमलता के पीछे ही बैठा था। प्रेमलता ने अनुभव किया जैसा वह कुछ सुन न रहा हो; उसकी दृष्टि उसी पर गड़ी हुई थी और जब प्रेमलता ने पीछे की ओर देखा तो आँखें टकरा गईं।

सोचती रही प्रेमलता। प्रतियोगिता समाप्त हो गई; निर्णायक परस्पर विचार-विनिमय कर रहे थे। कुछ क्षण के पश्चात् उन्होंने पुरस्कार पाने वालों की नामावली सुनाने से लिये जैसे ही कागज़ उठाया वैसे ही प्रेमलता को जैसे विश्वास हो गया कि प्रथम-पुरस्कार कांतिकुमार को ही मिला है। हृदय एक अद्भुत भावना से भर गया; जैसे उसी को पुरस्कार मिलने वाला हो।

समापति महोदय ने कहा—श्रीकांतिकुमार की कहानी प्रतियोगिता में सर्वश्रेष्ठ है। अभी उन्होंने हिन्दी को बहुत अधिक कहानियाँ नहीं प्रदान की परन्तु फिर भी इस कहानी में उनकी कला जिस परिपक्वता को प्राप्त हुई है उससे आशा ही नहीं मेरा तो विश्वास है कि कांतिकुमार हिन्दी के एक प्रसिद्ध कहानी-लेखक होंगे। सौ रुपये का प्रथम-पुरस्कार उन्हें प्रदान किया जाता है।

करतल ध्वनि से हाल का कोना-कोना भर गया। प्रेमलता ने पीछे मुड़ कर देखा। वह पुरस्कार लेने के लिये अपने स्थान से उठ कर आ रहा था। प्रेमलता को अपनी ओर देखते देखकर जैसे कुछ हिचका, फिर आगे बढ़ गया।

पुरस्कार ले जब वह अपने स्थान पर जा रहा था तभी प्रेमलता ने देखा उसकी आंखों में आत्माभिमान था। कितना सुन्दर लगता था ! गोरा चेहरा, बड़ी-बड़ी भावुक आंखें, लम्बा क्रद ! सुन्द- और स्वस्थ अंगेष्टि ! प्रेमलता ने जी भर कर सब कुछ एक ही दृष्टि में देख लिया और जब वह उसके निकट से ही अपने स्थान पर लौट रहा था तो प्रेमलता ने धीरे से कहा—मेरी हार्दिक बधाई मिस्टर कांतिकुमार !

कांतिकुमार जैसे चौंक पड़ा; धूम कर प्रेमलता की ओर देखा; उसके नेत्रों में कुछ पड़ने का प्रयत्न करता हुआ—“धन्यवाद” कह कर अपने स्थान पर चला गया। प्रेमलता का जैसे सब कुछ खोगया। ओह ! उसकी आंखों में कितना आत्मसमर्पण था, कितना मद था। सोचकर प्रेमलता की भावुकता द्रवित हो उठी।

प्रतियोगिता समाप्त हो गई तो प्रेमलता हाल से बाहर निकली। हाल के दूसरे दरवाजे से विद्यार्थियों के बीच घिरा हुआ कांतिकुमार निकल रहा था। प्रेमलता ने देखा तो जी में आया कि वह भी दो क्षण उससे बातें कर ले किन्तु असम्भव था। श्रीमती अरुणा का हाथ पकड़े हुए वह सड़क पर आ खड़ी हुई। श्रीमती अरुणा अपनी कार से आई थी। कार के निकट पहुँच कर कहा उन्होंने—बैठो, पहुँचा दूंगी।

प्रेमलता एकान्त चाहती थी; बोली—नहीं मेरा तांगा आया है।

‘अच्छा।’ कह कर श्रीमती अरुणा मोटर का दरवाजा खोल कर बैठ गई। प्रेमलता ने नमस्ते किया और अपने तांगे की ओर बढ़ी।

तांगे पर बैठते ही उसकी दृष्टि विश्व-विद्यालय के फाटक पर पड़ी। कांतिकुमार तीन चार मित्रों के साथ बाइसिकिल पर जा रहा था। तांगा आगे बढ़ा, सड़क पर पहुँचते-पहुँचते ही वह साइकिलों से आगे हो गया। प्रेमलता ने देखा कि उसे देखते ही कांतिकुमार ने आँखें नीची कर लीं परन्तु बीच-बीच में उसकी आँखें प्रेमलता की छवि की चोरी करने से न चूकतीं। प्रेमलता को हँसी आ गई तो उसने मुँह फेर कर तांगे वाले से कहा—रामनाथ, तांगा इतना तेज़ क्यों हांक रहे हो ?

तांगे की गति धीमी पड़ गई ।

तांगा सिविल-लाइन्स की ओर बढ़ रहा था । पहले चौराहे पर ही कांतिकुमार के साथी शहर की ओर मुड़ गये । अकेला वह तांगे के पीछे चल रहा था । सहसा उसने दृष्टि ऊपर उठाई; प्रेमलता ने उसे देख कर मुस्करा दिया । कांतिकुमार का शरीर जैसे हिल गया । साइकिल काँप उठी; कांतिकुमार ने तुरन्त ही बाइसिकिल सँभाली और तांगे से आगे बढ़ जाने के निश्चय से जोर से पैर चलाने प्रारम्भ किये ।

प्रेमलता उसका आशय समझ गई । इसलिये जैसे ही वह तांगे के निकट पहुँचा प्रेमलता ने पुकारा—मिस्टर कुमार !

कांतिकुमार चौंक उठा, पैर चलने बंद हो गये; आँखें प्रेमलता की आकृति पर गड़ सी गईं । क्षण भर तक प्रेमलता चुप उसकी ओर देखती रही, फिर बोली—मिस्टर कुमार, आपकी कहानियाँ मैंने पत्रों में बहुत पढ़ी हैं किन्तु यह न जानती थी कि आप हमारे विश्वविद्यालय के ही हैं ।

कांतिकुमार का मुँह खुल सका—धन्यवाद; मैंने इस वर्ष ही विश्वविद्यालय में प्रवेश किया है ।

‘आप की कहानियाँ सभी बहुत सुन्दर होती हैं पर यह कहानी तो आप की अद्भुत ही थी ।’

संकोच से कांतिकुमार ने उत्तर दिया—अच्छी है या नहीं यह तो आप ही लोग जान सकती हैं मैं जैसा बन पड़ता है लिख भर देता हूँ ।

‘नहीं आप बहुत अच्छी कहानियाँ लिखते हैं ।’ प्रेमलता का प्रशंसा करने से जी न भर रहा था, आँखें कांतिकुमार के ऊपर टिकी हुई थीं ।

‘सब कृपा है आप की ।’

प्रेमलता ने फिर पूछा—आप यहां एम० ए० में पढ़ते हैं न !

‘जी हाँ ।’

‘क्या लिया है ?’

‘फिलासफी ।’

‘फिलासफी ! और फिर भी हिन्दी से इतना प्रेम !’

कांतिकुमार मुस्कराकर रह गया ।

‘आपने बी० ए० कहां से किया था ?’

‘बनारस-विश्वविद्यालय से ।’

वार्तालाप समाप्त सा हो गया । प्रेमलता चाहती थी कि वार्तालाप का सिलसिला न टूटे परन्तु इस तरह प्रश्नोत्तर कितनी देर तक किया जा सकता है । अजीब व्यक्ति है, जो पूछे, केवल उसी का उत्तर देना जानता है ।

तभी कांतिकुमार ने पूछा—आप वीमेंस यूनीवर्सिटी की...

उसकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि प्रेमलता ने उत्तर दिया—जी, मैं बी० ए० फायनल में हूँ ।

और फिर वार्तालाप का सिलसिला ऐसा शुरू हुआ कि रास्ते भर बातें होती रहीं । कांतिकुमार ने बताया वह डी-रोड पर रहता है । प्रेमलता के बंगले से डी-रोड बहुत दूर नहीं है । पारस्परिक परिचय के पश्चात वार्तालाप का विषय साहित्य पर आ सका । कुछ क्षणों में ही दोनों के हृदय परिचित हो गये । प्रेमलता को उससे वार्तालाप करने में एक अनिर्वचनीय सुख का अनुभव हो रहा था ।

प्रेमलता का बंगला निकट आ गया तो नमस्ते कर कांतिकुमार आगे बढ़ गया । अपने कमरे में जाकर प्रेमलता एक कोच पर लेट गई । उसकी विचार धारा चल रही थी । कांतिकुमार स्वभाव के कितने अच्छे हैं; कितने सम्य दंग से बातचीत करते थे ! साहित्य का अध्ययन भी उनका गहरा मालूम होता है ।

यौवन में नारी में प्रेम की भूख जग उठती है । यौवन के साथ ही साथ प्रेम की भावना एक भावुकता सी बन हृदय में बैठ जाती है । हृदय एक अभाव का अनुभव करने लगता है । अभाव का यह मीठा-मीठा दर्द यौवन में सभी को अनुभव होता है युवा हृदय इसे प्रेम की देन कहते हैं पर धर्माचार्यों के सम्मुख यह पाप है, कलंक है । प्रेमलता

का हृदय भी एक अभाव का अनुभव कर रहा था। पुरुष का प्रेम उसको आज एक आवश्यकता सा प्रतीत हो रहा था।

बड़ी देर तक वह उसी प्रकार अपने विचारों में बहती हुई पड़ी रही। नौकरानी आई, पूछा—बीबी जी, चाय पियेंगी ?

प्रेमलता चाय बहुत पीती है परन्तु इस समय चाय पीने की उसकी इच्छा नहीं हो रही थी। वह चाहती थी कि उसे उसी प्रकार एकाकी पड़ी रहने दिया जाय। उसने उत्तर दिया—नहीं।

‘पांच बज रहे हैं।’

‘पांच बज रहे हैं !’ प्रेमलता ने आश्चर्य से दुहराया।

‘जी, बाबू जी चाय पी चुके।’

‘अच्छा लाओ।’ कुछ सोच कर उसने उत्तर दिया।

नौकरानी ने चाय लाकर एक छोटी मेज पर रख दिया और मेज खिसका कर प्रेमलता के सामने कर दी। चाय पी चुकने के बाद प्रेमलता उठ कर शीशे के सामने खड़ी हो गई। अपनी आकृति को शीशे के वक्षस्थल पर देखा। बड़ी-बड़ी आँखों में यौवन ने मादकता ढाल दी थी; कपोलों पर लाल मदिरा सी झलक रही थी। मुडौल वक्षस्थल उभरे हुए थे। अपने शरीर को उसने दृष्टि भर कर शीशे में देखा। कितनी सुन्दर है वह !

कांतिकुमार की वे याचना तथा आत्मसमर्पण भरी चितवन उसे स्मरण हो आई; गर्व से उसका मस्तक ऊँचा हो गया। नारी को अपने सौंदर्य का ज्ञान तभी होता है जब उसका प्रशंसक मिल जाता है। प्रेमलता आज अनुभव कर रही थी कि वह भी सुन्दर है।

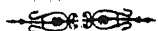
उस दिन घूमती हुई वह काफ़ी दूर तक निकल गई। अपने बंगले से इतनी दूर टहलती हुई वह कभी नहीं आई थी। बिजली का प्रकाश सड़क पर जगमगा रहा था। वह लौट पड़ी किन्तु उसके पैरों में जैसे सम्पूर्ण जीवन का भार सिमिट कर आ गया हो।

जब वह घर पहुँची तो पिता आ गये थे। हाल में प्रवेश करते ही

उन्होंने कहा—आज बहुत दूर टहलने चली गई थी, क्या प्रेम ?

‘जी हाँ’ कह कर वह अपने कमरे में चली गई ।

पढ़ने में उसका जी न लगा । खाना भी कमरे में ही मँगा कर खा लिया और पलंग पर पड़ रही । अपनी विचार धारा में बहती हुई वह कितनी ही देर तक जगती रही इसका उसे ज्ञान न था ।



## [ २ ]

प्रेमलता के पिता शिवाधार को किसी कार्यवश पटने जाना पड़ा था । जब वे वहाँ से लौटे तभी से ज्वर से पीड़ित थे । एक सप्ताह पश्चात् उनकी तबीयत आज कुछ ठीक थी । आराम कुर्सी पर बैठे हुए वे सिगरेट पी रहे थे । सिगरेट का धुआँ ऊपर की ओर उठ कर वक्र रेखाएँ बनाता हुआ शून्य में विलीन हो रहा था । एकान्त ने उन्हें दार्शनिक बना दिया था । धुएँ की वक्र रेखा को वे कुछ क्षण तक देखते रहे । जीवन का कितना गहन सत्य धुएँ की इस रेखा में निहित है ! इसी प्रकार मानव-जीवन भी है; कितने दुर्गम मार्गों से होकर वह ऊपर की ओर उठने का प्रयत्न करता है, परन्तु अन्त में उसे विलीन होना पड़ता है ।

सिगरेट का अन्तिम कश खींच कर उन्होंने उसे ‘ऐश-ट्रे’ में डाल दिया । मंद-गति से सिगरेट का अवशिष्ट भाग चीनी मिट्टी के उस पात्र में सुलग रहा था । शिवाधार सोचते रहे आधारहीन होकर सिगरेट का अवशिष्ट भाग किस प्रकार अपनी ज्वाला को छिपाये हुए सुलग रहा था । कितने समय से वे भी तो अपने अन्तर की ज्वाला को छिपाये हुए इसी प्रकार जल रहे हैं । उनके हृदय की वेदना काला धुआँ बनकर उनके भविष्य के विशाल शून्य में विलीन होती आई है । जीवन का सुख क्या है यह तो उन्होंने जाना ही नहीं ।

जिस समय उनका विवाह प्रेमलता की मां से हुआ था उस समय वे मेडिकल-कालेज से परीक्षा पास करके निकले ही थे। चारों ओर उन्हें निराशा ही निराशा दिखाई पड़ रही थी। पिता कुछ पैतृक-सम्पत्ति न छोड़ गये थे जिसके बल पर वे अपना व्यापार प्रारम्भ कर सकते। उसी समय मां की अनुरोध की रक्षा करने के लिये उन्होंने प्रेमलता की मां से विवाह कर लिया था परन्तु, आर्थिक संकट बढ़ता ही गया। कई वर्ष तक वे इधर उधर जीविका की खोज में घूमते रहे। उसी बीच प्रेमलता का जन्म हुआ था। और उसके बाद सहसा भाग्य ने पलटा खाया और यहां आने पर उनकी प्रेक्टिस चल निकली; उन्होंने पर्याप्त सम्पत्ति उपार्जन की; परन्तु सुख उनके भाग्य में बड़ा ही नहीं था। प्रेमलता छोटी ही थी तभी उसकी मां की मृत्यु हो गई। डाक्टर शिवाधार के लिये यह आपत्ति पहाड़ की भांति टूट पड़ी। घर में बृद्धा मां के अतिरिक्त और कोई न था। प्रेमलता के पालन-पोषण का भार मां पर आ पड़ा। उन्होंने अपने पुत्र से दूसरा विवाह करने का अनुरोध किया परन्तु डाक्टर शिवाधार इसके लिए राजी न हुए। प्रेमलता की मां का चित्र बराबर उनकी आंखों के सम्मुख नाचता रहा और उन्होंने विवाह करने से इन्कार कर दिया। मां ने भी हार कर आग्रह करना त्याग दिया और जीवन के दिन पूरे करने लगी।

प्रेमलता जब तेरह वर्ष की हुई तब डाक्टर शिवाधार की मां भी मर गई। डाक्टर शिवाधार के सम्मुख यह कठिन प्रश्न था। दिन भर वे अपनी डिस्पेंसरी में रहते, परन्तु शाम को घर आने पर उनको एक बार प्रेमलता की मां का अवश्य ध्यान आ जाता। पत्नी का अभाव उन्हें बुरी तरह खटकने लगा। उनकी अवस्था चालीस की हो रही थी और इस अवस्था में पुरुष किसी स्त्री का स्नेह पाने के लिये विह्वल हो उठता है। वह चाहता है कोई उससे सहानुभूति करे, किसी से वह अपना सुख-दुःख कह सके और तभी डाक्टर शिवाधार के घर में मालती ने प्रवेश किया।

मालती प्रेमलता की मौसी थी; उसकी मां से छोटी । मालती के पति रेलवे में काम करते थे । एक दिन काम से लौटे तो उनकी तबीयत खराब मालूम हुई । तीन-चार दिन के बीमारी के बाद उनकी मृत्यु हो गई । मृत्यु का समाचार पाकर डाक्टर शिवाधार उनके यहाँ गये । मालती की दुनियाँ बिगड़ चुकी थी । आगे-पीछे उसके कोई नहीं । पति के कोई निकट सम्बन्धी भी नहीं थे जिनके पास वह अपने जीवन के शेष दिन व्यतीत कर सकती । डाक्टर सिनहा उसे अपने साथ लिवा लाये । और तभी से मालती उनके साथ रह रही है ।

मालती ने डाक्टर शिवाधार के जीवन में एक परिवर्तन ला दिया । प्रत्येक कार्य वे समय पर करने लगे; ब्रब का जाना उन्होंने पुनः प्रारम्भ कर दिया । घर की ओर से उनकी चिन्ता कम हो गई । इतना सब होते हुए भी डाक्टर शिवाधार अपने जीवन में स्त्री का अभाव अनुभव करते ही रहे । मालती को उनके घर आये हुए चार वर्ष होने को आये परन्तु अभी तक उन्हें उसके पास बैठने का अवसर ही न आया था । मालती प्रत्येक समय अपने काम में लगी रहती; डाक्टर शिवाधार के पास बैठने का जैसे उसे अवकाश ही न हो । निकट से उन्होंने उसे कम ही देखा था ।

इस बार की बीमारी में उन्हें मालती के सम्पर्क का अवसर प्राप्त हुआ । वह अधिक समय उनकी सेवा करने में, उन्हें दवा इत्यादि देने में ही व्यतीत करती थी । जब डाक्टर शिवाधार सो जाते तब भी वह उनके निकट बैठी रहती । बहुधा वे उसकी ओर देखते तो देखते ही रह जाते । कितनी हँसमुख आकृति है; सदैव हँसती ही रहती है, जीवन की व्यथाओं को जैसे वह हँस कर भेल जाना जानती है । मालती डाक्टर शिवाधार के लिये एक पहेली सी बन गई । उन्होंने उसकी हँसती हुई आँखों में भाँक कर यह जानने का कई बार प्रयत्न किया कि कहीं उनमें दुःख की कोई काली छाया भी है या नहीं परन्तु कहीं भी तो उन्हें वेदना की वे काली रेखायें न दिखाई पड़ी ।



डाक्टर शिवाधार ने दूसरा सिगरेट जलाया। दियासलाई की कड़ी की लौ को क्षण भर देखते रहे फिर उसे उन्होंने 'ऐश-ट्रे' में डाल दिया और सिगरेट का कश खींचने लगे। उनके हृदय की भावुकता की सरिता बांध तोड़ कर बह चली। वे सोचने लगे—बिना पत्नी के जीवन कितना नीरस है; कहीं भी तो कोई क्षण भर के लिए विराम नहीं है। दिन रात वे परिश्रम करते हैं परन्तु क्यों ? कोई नहीं जिसके पास बैठ कर वे क्षण भर के लिये अपना सुख-दुःख भूल जायँ। दिन भर उन्हें रोगियों को देखने और दवाइयों के नुस्खे लिखते ही बीतता है जैसे उनका सम्पूर्ण जीवन ही इसीलिये बना हो। उनके हृदय का अभाव उभर कर ऊपर आ गया। बिना पत्नी के उनका जीवन नीरस है; उन्हें किसी स्त्री का प्रेम चाहिए; उसके बिना वे जीवित नहीं रह सकते। तभी उन्हें ध्यान आया मालती का। वह भी तो विधवा है; कोई भी तो नहीं है, जिसे वह अपना कह सके।

ध्यान आते ही मालती की वह हँसती हुई आकृति उनकी आँखों के सम्मुख खिंच गई। तो क्या वह अभाव का अनुभव नहीं करती; क्या कभी उसे यह नहीं जान पड़ता कि उसका जीवन बिना पुरुष के अपूर्ण है।

डाक्टर शिवाधार की विचार धारा बह ही रही थी कि कमरे का दर-वाजा खुलने का शब्द हुआ। घूम कर देखा तो मालती कमरे में प्रवेश कर रही थी। डाक्टर ने सिगरेट की राख को 'ऐश ट्रे' में भाड़ कर एक लम्बी कश ली। निकट आते ही मालती ने पूछा—अरे आप उठ आये ? कहिए अब जी कैसा है ?

'अच्छा है मालती, तुम्हारी इतनी सेवा के बाद भी मैं अधिक समय तक बीमार कैसे रह सकता हूँ ?' डाक्टर शिवाधार ने उत्तर दिया।

'आप कितने कमजोर हो गये हैं; व्यर्थ ही उठ आये आप ?'

'नहीं मालती, अब मेरी तबीयत बिल्कुल अच्छी है। बुखार मुझे प्रातः से ही नहीं है। केवल कमजोरी है और वह एक दिन में तो दूर न हो जायगी।'

‘हां, इसीलिये तो कहती हूं कि अभी आप पड़े रहें तो अच्छा है।’

‘पड़े-पड़े जी भी तो उब गया है।’

‘किन्तु अभी डाक्टर ने उठने की आप को आशा नहीं दी।’

‘डाक्टर सिनहा मेरी आवश्यकता से अधिक फिक्र कर रहे हैं।’

मालती ने छोटी मेज की ओर देखा। दवा अभी उसी प्रकार रखी थी जैसी कि वह पिछली खूराक पिलाने के पश्चात् छोड़ गई थी। निकट जाकर शीशी को उठा कर उसने ध्यान से देखा फिर कहा—दवा का समय तो हो गया आपने अभी दवा नहीं पी ?

दवा निकाल कर मालती ने डाक्टर शिवाधार के हाथ में गिलास पकड़ा दी; उंगलियां छू गईं; एक बिजली सी सारे शरीर में दौड़ गई। डाक्टर शिवाधार ने एक सिहरन का अनुभव किया। आँखें उठा कर उन्होंने मालती की ओर देखा—वह उसी प्रकार खड़ी थी।

डाक्टर शिवाधार ने दवा का घूंट गले के नीचे उतार कर गिलास मेज़ पर रख दी। मालती क्षण भर खड़ी रही, फिर जाने लगी तो डाक्टर शिवाधार ने कहा—कहां जा रही हो मालती ?

मालती चौंक पड़ी; पीछे मुड़ कर कहा—कहीं तो नहीं; महराजिन खाना बना रही हैं, वहीं जा रही थी।

‘थोड़ी देर मेरे पास भी बैठो।’ डाक्टर शिवाधार की वाणी में दैन्य था, आग्रह था।

मालती आकर एक कुर्सी खींच कर बैठ गई। खुली हुई खिड़की से सन्ध्या का सुनहला प्रकाश कमरे में आ रहा था। सूर्य की सुनहली रेखा मालती की कुर्सी से थोड़ी दूर पर ही पड़ रही थी जैसे वह मालती की छाया को पकड़ने का प्रयत्न कर रही हो। मालती ने अपनी भोली आँखें ऊपर उठाईं तो डाक्टर शिवाधार उसे अपनी ओर देखते मिले। आज डाक्टर शिवाधार में वह एक परिवर्तन का अनुभव कर रही थी; जी में आया कि वह उठ कर चली जाय, पर जा न सकी वह; उसी प्रकार बैठी रही।

कुछ क्षण बाद डाक्टर शिवाधार बोले—मालती, बीमारी में मनुष्य के मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार की भावनाएँ आती रहती हैं।

‘जी हाँ।’

‘आज प्रातः से ही मेरी तबीयत कुछ हलकी है और जी में आता है कि बिस्तर छोड़ कर बाहर निकलूँ परन्तु तुम्हारे भय के कारण दिन भर बिस्तर पर पड़ा-पड़ा सोचता रहा, जीवन की कितनी ही भूली हुई घटनाएँ फिर उभरकर ताज़ी हो गईं; अभाव ऊपर आकर फैल-फैलसे गये।’

डाक्टर शिवाधार क्षण भर को रुके; मालती उनकी ओर देख रही थी। कोई उत्तर न पाकर डाक्टर शिवाधार ने फिर कहना शुरू किया—मेरे जीवन में शांति कभी नहीं रही मालती ! बाहर से तुम देखती हो कि मुझे किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है—सब कुछ तो मेरे पास है; किन्तु फिर भी मेरे हृदय को शांति नहीं है। सम्पत्ति और ऐश्वर्य ही सब कुछ नहीं है जिसे मनुष्य जीवन में चाहता है।

मालती ने एक दीर्घ निश्वास ली। डाक्टर शिवाधार क्षण भर चुप रह, फिर बोले—मालती आज नव वर्षों से मैं विधुर जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। कितनी बार लोगों ने मुझसे विवाह करने का आग्रह किया, परन्तु विवाह मैं कर नहीं सकता हूँ। एक स्मृति है जो जीवन में उभर कर रहना चाहती है उसे दबा कर, मिटा कर, विवाह करने की सामर्थ्य मुझ में नहीं है। किन्तु इधर ज्यों-ज्यों मेरी अवस्था अधिक होती जा रही है, ज्यों-ज्यों मैं वृद्धावस्था के आंगन में प्रवेश करता जा रहा हूँ, त्यों-त्यों मुझे यह अनुभव हो रहा है कि मुझे एक साथी की आवश्यकता है; जो मेरा साथ दे सके; जिससे मैं अपना सुख-दुःख कह सकूँ। पुरुष को स्त्री का स्नेह और सहानुभूति जीवन की ही भांति आवश्यक है।

मालती क्षण भर तक डाक्टर शिवाधार के भावों को उनकी आंखों में पढ़ने का प्रयत्न करती रही, फिर बोली—आप विवाह कर ले; अभी आपकी अवस्था ही क्या है ?

डाक्टर शिवाधार ने जैसे कुछ सुना ही न हो। उठकर वे कमरे में टहलने लगे। मालती के मस्तिष्क में द्वन्द्व मचा हुआ था। डाक्टर के अभाव का अनुमान वह कर रही थी। चार वर्ष हुए उसको विधवा हुए। इन चार वर्षों के एक-एक क्षण को उसने युग-युग की भांति काटा है। यहां आकर उसे चिन्ता किसी बात की नहीं। डाक्टर उसकी सभी आवश्यकताओं का स्वयं ध्यान रखते हैं; काम करने के लिये नौकर-चाकर है। सारे घर की वह मालकिन है। प्रेमलता भी उसे अपनी मां की ही भांति चाहती है। बेचारी की मां बचपन में ही मर गई अतएव मां का स्नेह पाने के लिये वह उत्सुक रहती है। कितनी ही रातें मालती ने सारी रात जग कर काटी है। उसने अनुभव किया जिस प्रकार बिना पति के उसको पति-विहीन अपना जीवन अपूर्ण तथा दुर्बल सा प्रतीत हो रहा है उसी प्रकार डाक्टर शिवाधार भी तो अनुभव करते होंगे।

डाक्टर खिड़की के पास आकर खड़े हो गये। बाहर वृक्षों की शिखाओं पर अवसान को प्राप्त होती हुई धूप खेल रही थी, आकाश में पक्षियों के झुंड उड़े जा रहे थे। क्षण भर देखते रह कर उन्होंने कहा—मालती, यह सारी प्रकृति जैसे मेरा अट्टहास कर रही हो, मेरी वेदना को बढ़ाना चाहती हो। संध्या के इस सुनहले प्रकाश में पक्षियों के जोड़े अपने-अपने घोंसलों की ओर उड़े जा रहे हैं और मैं एकाकी—एकाकी जिसका न कोई विश्राम स्थान और न कोई साथी।

डाक्टर का हृदय पिघल कर भावुक हो गया था, बोले—प्रेमलता की मां की मृत्यु के बाद मैं स्त्रियों से एक प्रकार से दूर ही रहा हूँ। रोगी के नाते जिन स्त्रियों को देखना पड़ता उनके अतिरिक्त और मैं किसी स्त्री से कभी बोलता न था। मैंने किसी के यहां आना-जाना छोड़ दिया। फिर भी मेरा यह अभाव उभर कर रहना चाहता है।

डाक्टर खिड़की से हट कर मालती के निकट आ गये थे—मालती को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—मालती, मैंने विवाह नहीं किया। इसका एक कारण है। यह नहीं कि मैं विवाह करना नहीं

चाहता बल्कि कारण यह है कि मुझे कोई स्त्री ऐसी नहीं मिल सकी जिसे मैं जी भर कर प्यार कर सकूँ।

मालती आश्चर्य से डाक्टर शिवाधार की भाव-भंगियाँ देख रही थी। मालती की कुर्सी पर अपना हाथ टेक कर वे खड़े हो गये तो मालती संकोच से उठ खड़ी हुई। डाक्टर कुछ हटकर खड़े हो गये, बोले—मालती तुम भयभीत हो गईं। बैठो।

मालती फिर बैठ गई। डाक्टर ने फिर कहना प्रारम्भ किया—मालती, जिस दिन से तुम्हें अपने यहाँ लिवा लाया था उस समय मैंने सोचा था कि तुम प्रेमलता की देख-रेख करती रहोगी किन्तु उस समय मैंने यह नहीं सोचा था कि मुझे भी देख-रेख करनेवाले की आवश्यकता है। मेरी चार दिन की इस बीमारी ने मुझे बहुत कुछ सोचने का अवसर दिया है। मैं अपने को तुम्हारे हाथों में सौंपना चाहता हूँ मालती। क्या...

मालती जैसे सोते से जाग उठी हो। डाक्टर की बातें वह आगे सुन न सकी। 'जीजा जी' उसने केवल इतना ही कहा।

डाक्टर फिर कहने लगे—मालती, मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि मेरे इस अभाव की पूर्ति केवल तुम्हीं से हो सकती है; तुम्हें अपने निकट देख कर मैं कुछ दूसरा अनुभव करने लगता हूँ।

'जीजा जी, आपकी तबीयत ठीक नहीं है।'

'नहीं मालती ठीक है, आज एक वर्ष से मैं तुम्हारी ओर आकर्षित हो रहा हूँ। कितनी ही बार इच्छा हुई कि तुमसे कुछ कहूँ पर साहस न होता था। पीड़ा भरती गई और अब जब वह लबालब हो गई तो उसका छलकना अनिवार्य ही है।'

'जीजा जी' मालती अधिक कह न सकी।

'मालती, मेरा जीवन तुम पर निर्भर है। यदि तुम मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर दोगी तो मेरा हृदय चूर-चूर हो जायगा। एक आशा की भीनी रेखा के बल पर ही मैं जीवित हूँ यदि वह भी टूट गई तो—'

‘जीजा जी, मैं विधवा हूँ, ईश्वर ने मेरा सर्वस्व नष्ट कर दिया है। मुझसे इस प्रकार का प्रस्ताव आप क्या उचित समझते हैं?’

‘मैं समझता हूँ मालती, यह कोई अनुचित प्रस्ताव नहीं है। मैं तुमसे विवाह करने को उद्यत हूँ?’

‘जीजा जी, स्त्री का पति एक होता है।’ कह कर मालती कमरे से बाहर चली गई।

डाक्टर शिवाधार जाती हुई मालती को देखते रहे फिर निकट की ही कुर्सी पर जैसे गिर पड़े। बड़ी देर तक वे उसी प्रकार पड़े रहे। कमरे में अन्धकार व्याप गया, किन्तु उनकी इच्छा उठकर बिजली जलाने की न हुई। बाहर के अन्धकार में ही वे अपने अन्तर का अन्धकार छिपाना चाहते थे। नौकर ने आकर जब बिजली जलाई तो वे कुर्सी पर से उठे और जाकर चारपाई पर लेट रहे।



### [ ३ ]

डाक्टर शिवाधार की तथीयत अधिक खराब हो गई। डाक्टर ने सुबह उनको देख कर कहा—मालूम होता है इन्हें कोई दुःख पहुँचा है।

अपराधी की भांति मालती खड़ी रही। कई दिन बाद जब डाक्टर शिवाधार की बीमारी खबर मिली तो मालती के बड़े भाई उन्हें देखने के लिये आये थे। ग्यारह बजे की गाड़ी से वे जाने वाले थे।

दस बजे प्रेमलता कालेज चली गई। डाक्टर शिवाधार हाल में बैठे हुए थे। मालती के भाई कमरे में अपना सामान ठीक कर रहे थे। उसी समय मालती ने हाल में प्रवेश किया। उस दिन के बाद डाक्टर शिवाधार को आज ही देखा था। मालती उनसे दूर-दूर रहने लगी थी वह उन्होंने अनुमान कर लिया था। उनकी देख-रेख भी नौकर को सौंप दी गई थी।

डाक्टर शिवाधार को नमस्ते करके वह एक कुर्सी पर बैठ गई।  
डाक्टर शिवाधार ने पूछा—कहो, मालती अच्छी हो।

‘जी हां।’

क्षण भर शांति रही, फिर मालती ने कहा—जीजा जी, मैं भाई साहब के साथ जा रही हूँ।

डाक्टर शिवाधार जैसे गिरना चाहते थे। बड़ी देर तक वे चुप रहे, फिर बोले—मालती, यह निश्चय तुमने क्यों किया ?

‘कोई कारण नहीं, भाई साहब आ गये हैं इनके साथ—’

‘उस दिन की घटना के लिये मुझे क्षमा करो मालती ! तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। तुम यहीं रहो।’

मालती चुप रही। डाक्टर शिवाधार ने फिर कहा—मालती, तुम चार वर्षों से मेरे यहां रह रही हो। तुम जानती हो—

‘मैं आपको दोष नहीं देती जीजा जी, मेरा यहां न रहना ही उचित है।’

‘तुम्हारा इस प्रकार जाना मुझे सदैव कष्ट देता रहेगा।’

‘किन्तु इसमें आपका ही हित है।’

‘मालती, मैं तुमसे अधिक नहीं कह सकता। जो तुम उचित समझो वही करो, पर हां, यदि कभी तुम्हें किसी बात की आवश्यकता हो तो मुझे अवश्य लिखना।’

‘जीजा जी, आप मेरे पूज्य हैं और सदा वैसे ही रहेंगे।’

डाक्टर शिवाधार की आंखों से आंसू गिरने लगे। उन्होंने रुँधे कंठ से कहा—मालती, यदि मेरे खयाल से न सही तो प्रेमलता को देखने के लिये ही कभी-कभी आ जाना।

इसी समय मालती के भाई ने कमरे में प्रवेश किया। डाक्टर शिवाधार ने अपने हृदय के वेग को दबाते हुए पूछा—आप तैयार हो गये।

‘जी हां।’

डाक्टर शिवाधार ने नौकर से सामान मोटर पर रखने को कहा । सामान मोटर में लद चुका तो मालती तथा उसके भाई के साथ डाक्टर शिवाधार बाहर आये । मालती मोटर में बैठ गई । डाक्टर शिवाधार आश्रयहीन शिशु की भांति मालती की ओर देख रहे थे ।

डाक्टर शिवाधार बाहर के बरामदे में आ गए थे । मालती उनके पीछे-पीछे आ रही थी; आँखें उसकी नीची थी जैसे 'कुछ' सा अपना वह खोज रही हो । डाक्टर शिवाधार के मस्तिष्क में एक तूफान-सा उठ रहा था पर आँखों से निराशा स्पष्ट झलक रही थी । बरामदे में आ वे खड़े हो गए । मालती को उन्होंने व्यर्थ में ही इस प्रकार अपमानित किया । उसी अपमान के कारण तो वह उनके घर से चली जा रही थी । डाक्टर को स्मरण हो आया जब से वह यहां आई है उनके तथा प्रेमलता के सुख का उसने कितना ध्यान रखा है । जीवन में निराश्रय है वह; एक आश्रय पा ही तो उनके यहां रहने के लिए आई थी किन्तु रख न सके वे उसे ।

उनका क्षोभ उभर कर आँखों पर छा गया । जीवन में कभी कभी कोई-कोई घटना एक चिह्न बना देती है हमारे पथ पर, वहीं पहुँच कर शायद हम एक बार अपना नया मार्ग ग्रहण करने की बात सोचने लगते हैं । डाक्टर शिवाधार के लिए भी इस समय ऐसा ही प्रतीत हो रहा है । एक निश्चित मंजिल की ओर वे वर्षों से बढ़ रहे हैं पर आज अपनी भावनाओं के इस दुराहे पर आकर उन्हें क्षण भर रुक जाना पड़ा; क्षण भर सोचना पड़ा कि भविष्य में उनका पथ होगा किस दिशा में ।

डाक्टर अपने विचारों में उलझे हुए उसी प्रकार खड़े थे; ध्यान उन्हें जैसे कुछ रह न गया हो कि सहसा देखा मालती उनके सम्मुख खड़ी है । अपनी भूली सुधि को समेट कर वे बोले—मालती, चमा करना !

आँखों में उसके आँसू छलछला आये । यह नारी पुरुष के सम्मुख कितनी निर्बल है यह वह इस समय जैसे अनुभव कर रही थी । उसी दिन से



मालती उलझी-उलझी सी रही है। निर्णय वह कुछ कर न पा रही थी तभी आ गए उसके भाई साहब; आज जाने कैसे उसने निर्णय कर डाला कि वह अब डाक्टर के यहां नहीं रहेगी। किन्तु इस समय उसे जान पड़ रहा था कि उसने जैसे निर्णय बिना सोचे समझे ही कर डाला हो। डाक्टर के यहां उसे इतने दिन रहते हो गया पर आज की भांति वह अपने को निर्बल नहीं पा रही थी।

नमस्ते करने के लिए उसके हाथ उठ गए तो डाक्टर शिवाधार ने भी हाथ जोड़ लिए; उनकी करुणा उनके कंठ में आकर जैसे बस गई हो सो बोल वे न सके। भाई साहब भी नमस्ते कर तांगे पर जब बैठ गए तो डाक्टर शिवाधार की वेदना जैसे फूट पड़ी हो; जैसे वह घट भर आया हो और यह नई वेदना उसमें न समा सकती हो। सो आँखों में छलछला उठी। मालती ने देखा तो उसके जी में बड़ी 'विथा' लगी। उसने अपना मुंह दूसरी ओर कर लिया।

और तांगे की पहियां बढ़ चलीं--खड़-खड़-खड़-खड़।

पर डाक्टर शिवाधार का ध्यान इस ओर नहीं था। वे अनिमेष तांगे की ओर देख रहे थे। तांगा जब तक सड़क पर जा एक ओर नहीं मुड़ गया आंसू में धूमिल हुई पुतलियों से वे उसकी ओर देख रहे थे। जब तांगा फाटक से बाहर चला गया तब वे जैसे एक कुर्सी पर गिर पड़े--एक जर्जर-सा सूखा वृद्ध हो यथा, जिसकी जड़ों को किसी ने काट दिया हो। क्षण भर पड़े वे तांगे के जाने की आवाज सुनते रहे और फिर जब वह ध्वनि अन्य तोंगों के चलने की ध्वनि में विलीन हो गई तो डाक्टर शिवावार क्षण भर सोचते रहे--यही तो हमारे जीवन का क्रम है। एक आवाज-सी हमारे हृदय में किसी के लिए उठती है और फिर वह अन्य आवाजों में विलीन हो जाती है। पर यह जो आवाज एक दर्द बन कर मालती के लिए उठ रही है यह तो विलीन होती नहीं दृष्टि आ रही है। कितना विवश है यह प्राणी !

कितनी देर तक वे उसी प्रकार बैठे रहे इसका उन्हें ध्यान न रह गया था। नौकर कई बार आया पर डाक्टर की स्थिति देख कुछ कहने को उसका साहस नहीं हुआ, सो चला गया। प्रेमलता उस दिन प्रातः से ही कहीं चली गई थी—किसी सहेली के यहां निमन्त्रण था। मालती जिस समय जा रही थी वह घर पर नहीं थी। सो जब वह आई तो अपने पिता को द्वार पर आँखें बन्द किए कुछ सोचते से बैठे पाया। कुर्सी के निकट आ वह खड़ी हो गई। आहट पा डाक्टर शिवाधार की आँखें खुल गईं। प्रेमलता को वे खुली-सी आँखें क्षण भर देखती रहीं, तो प्रेमलता को कुछ अजीब-सा लगा—“बोली—पिता जी—आपकी तबीयत कैसी है ?

प्रश्न सुन जैसे वह चौंक उठे, बोले—ठीक है प्रेम, ऐसे ही बैठा सोच रहा था। कहां गईं थीं तुम !

‘वह सुलेखा है न, आज उसी के यहां पार्टी थी। मुझे सुबह से ही बुला लिया था—प्रबन्ध करने को; अभी तो फिर जाना है।’ प्रेमलता पिता से दुलरा कर कुर्सी के आर्म पर बैठ गई तो उन्होंने कहा—‘ओह, तुम रही नहीं और तुम्हारी मौसी चली गईं। जाते समय तक बेचारी तुम्हें कितना खोज रही थीं।

‘चली गईं मौसी ! कहां ?’ आश्चर्य से प्रेमलता ने पूछा।

डाक्टर क्षण भर सोचता रहा फिर बोला—चली गईं। अपने मायके। भाई उनके आए थे उन्हीं के.....’ आवाज उनकी रुक गई।

प्रेमलता के लिए यह सब अजीब-सा लग रहा था, बोली—और आवेंगी कब ?

क्या उत्तर दें डाक्टर शिवाधार इसका ? जानते हैं वे कि मालती अब उनके यहां कभी नहीं आवेगी।

बोले—अब वे नहीं आवेंगी।

‘नहीं आवेंगी। क्यों ?’

‘उनकी इच्छा थी। स्त्री शायद पति का घर छोड़ किसी के यहां भी अधिक समय तक नहीं रह सकती चाहे उसे कितना ही सुख क्यों न हो। दुःख पड़े पर वह केवल अपना मायका ही सहेजती है।’

डाक्टर शिवाधार ने यह बात कुछ ऐसे ढंग से कही कि प्रेमलता का साहस कुछ अधिक पूछने का न हुआ। मौसी के चली जाने से उसे बड़ा दुःख है पर आश्चर्य तो यह हो रहा था कि उन्होंने इतनी जल्दी चले जाना चाहा क्यों? आखिर यह निर्णय उन्होंने किया ही क्यों?

वह उठ कर अपने कमरे में चली आई। देखा तो मेज पर एक लिफाफा पड़ा है। उसने उठा लिया। मौसी यह पत्र उसके लिए छोड़ गई हैं। खोलकर वह उसे पढ़ने लगी—

लिखा था—

प्रिय प्रेम !

तुम्हें छोड़ आज जा रही हूँ; कितनी विथा मुझे हो रही है यह तुम्हें बताना नहीं सकती। इतने दिन तक तुम्हारे यहां जो सम्मान मुझे मिलता रहा वह मेरे हृदय में एक निधि सा बनकर रहेगा। एक स्मृति जो तुम्हारी मेरे हृदय पर अंकित हो गई है उसे जीवन भर क्या भुला सकूंगी। जाना मैं चाह भी नहीं रही हूँ पर जाना मुझे पड़ेगा ही ! अब शायद फिर कभी तुम्हारे पास न आ सकूँ। तुम बुरा न मानना प्रेम ! जीवन में परिस्थितियाँ होती हैं। यह जीवन और है ही क्या ? एक मशीन से ही तो हम हैं, जो अपनी शक्ति कहीं और प्राप्त करती है। हमारे जीवन के प्रत्येक पुर्जे किसी अज्ञात शक्ति के इशारे पर ही अपना-अपना काम करते हैं। किसी बात पर भी तो किसी का वश नहीं। सो इस प्रकार जाना भी मेरा कुछ ऐसा ही है। जाना होगा ही इसलिए जा रही हूँ।

तुम अपनी ओर ध्यान रखना। जीजा जी अभी ठीक तरह से अच्छे नहीं हो पाये हैं उनकी ओर भी ध्यान रखना। कभी-कभी उनके निकट बैठ उनके हृदय को बहला देना। जीवन की जाने कितनी वेदना समेट उन्होंने अपने हृदय में भर रखी है। उसमें तुल वे न सकें यह ध्यान रखना।

बस विदा दो ! एक बार अपनी मौसी की भूलों को क्षमाकर उसे भूल जाने का प्रयत्न करना।

तुम्हारी—

माखती

प्रेमलता क्षण भर तक पत्र की ओर देखती रही। मालती की बात उसे कुछ समझ में नहीं आ रही थी पर जाने क्यों उसे विश्वास हो गया कि कोई बात मौसी के विरुद्ध हो अवश्य गई थी जिससे उन्होंने यहां न रहना ही उचित समझा। फिर उसे ध्यान हो आया। मौसी इधर कई दिनों से उदास रहती थीं, जैसे कुछ वे सोच रहीं हो। पिता जी की बीमारी में उन्होंने बड़ी सेवा की थी पर इधर वे उनकी ओर भी अधिक ध्यान नहीं देती थीं—यही क्यों पिछले कई दिनों से पिता की सारी परिचर्या जैसे नरेश पर डाल दी गई हो; मौसी ने जैसे अवकाश ले लिया था।

वह सोच ही रही थी कि सहसा उसके जी में आया तो क्या पिता जी ने उन्हें कुछ कहा किन्तु पिता जी की बात का इस प्रकार बुरा उन्हें मानना तो न चाहिए था। बीमार हैं वे; और ऐसी स्थिति में उनसे इस प्रकार बुरा मान लेना क्या ठीक होगा।

और पिता जी शायद जब से मौसी गई हैं बाहर उसी प्रकार बैठे हैं। आँचल के कोर को उँगलियों के साथ उमेठती वह बाहर आ गई। पिता उसी प्रकार बैठे थे। प्रेमलता ने कहा—पिता जी भीतर चल कर लेटें। अभी आप बहुत कमजोर तो हैं।

डाक्टर शिवाधार यंत्र-चालित से उठ कर अपने कमरे में चले गए, तो प्रेमलता खड़ी देखती रही।



## [ ४ ]

निशीथ कालेज में प्रोफेसर हैं। कुछ भूला-सा व्यक्ति है, सब ओर से लापरवाह, दिन भर पुस्तकों में उलझा रहता है। अपने विद्यार्थियों के बीच वह इतना लोकप्रिय हो कैसे गया इसकी भी एक कहानी है। चौतीस वर्ष का युवक, उलझे बिखरे बाल, आँखों पर सुनहली कमानी का चश्मा, जैसे दुनिया को वह इन दो शीशों में ही भर रखना चाह रहा

हो। यह निशीथ सदैव से ही तो इसी प्रकार रहा है। पच्चीस वर्ष पूर्व जिन्होंने उसे स्कूल में पढ़ते देखा है वे आज भी उसकी बात कहते हँसने लगते हैं।

अविनाश इंगलैंड से वैरिस्टर हो आया है; अभी प्रेक्टिस चलती कम है। निशीथ का वह बचपन का सहपाठी है। वह कहा करता है— यह 'पज़ल-हेड' है। सीधी बात कभी इसे समझ में नहीं आ सकती। बचपन में मास्टर जो कुछ पढ़ा देते उसे समझने में ही सदैव उलझा रहता। उलभाव-पूर्ण ही जैसे उसके मस्तिष्क की बनावट हो।

पर निशीथ को प्रेमलता ने क्यों पति चुना यह आश्चर्य है। उसके निकट कितने ही युवक प्रेम-भिक्का के लिए प्रस्तुत थे पर जैसे उस समय उसे ध्यान भी नहीं आया किसी का। उसने निशीथ को ही अपना पति चुन लिया। डाक्टर साहब को प्रेमलता के निर्वाचन में कोई त्रुटि न दिखाई पड़ी। प्रेमलता उनकी एकमात्र पुत्री है; सम्पत्ति का उनके पास अभाव नहीं है और फिर निशीथ भी बिल्कुल निर्धन नहीं। पिता ने काफी सम्पत्ति उपार्जित की है और वह स्वयं भी क्या कुछ कम कमा रहा है।

जिस दिन से प्रेमलता निशीथ के घर में आई है उसने उसमें जैसे एक नया जीवन फूंक दिया है। अस्त-व्यस्त-सा उसका सारा घर अब तक रहा है। निशीथ को जैसे इस सबकी चिन्ता ही न रही हो। सामने यह जो पार्क है उसकी ओर किसी ने शायद कभी ध्यान ही नहीं दिया। गुलाब की झाड़िया बड़ कर एक दूसरे से उलझ गई हैं। चारों ओर घास उग आई है। निशीथ एक कमरे में रहता था। उसका पुस्तकालय था यह। और कमरों से उसका कोई सम्बन्ध न था।

किन्तु प्रेमलता ने निशीथ के जीवन में एक परिवर्तन ला दिया। उसकी अस्तव्यस्ता दूर होने लगी। उसके विद्यार्थी आश्चर्य करते कि सदैव ही क्लास में देर से आने वाला निशीथ अब ठीक समय पर क्यों आने लगा। टाई भी तो अब उनकी ठीक बंधी रहती है। बालों में तेल

कंधी होने लगी पर सोचते सब यह कि निशीथ ही अपने लिए यह सब करता है।

उस दिन डाक्टर शिवाधार जो आये तो प्रेमलता से बोले—प्रेम, तुमने निशीथ को जिस प्रकार बदल दिया है उस प्रकार शायद कोई भी न बदल पाता।

मुस्करा कर रह गई प्रेमलता।

पत्नी के आने पर निशीथ का कमरा बदल गया। कालेज से अवकाश पाते वह अपने कमरे में जा पुस्तकों से उलभ जाता। पति की सुविधा ही को सोच प्रेमलता ने उसकी पुस्तकों की आल्मारी सोने के कमरे ही में रखा दी थी। कभी-कभी वह पति से हँस कर कहती—यह कमरा जैसे तुम्हारी 'मांद' हो जब देखो यहीं बैठे रहते हो।

निशीथ हँस देता। पत्नी की बात का वह कभी उत्तर न देता। जानता है कि प्रेमलता कुछ अजीब-सी लड़की है। कालेज जाने के पहले वह स्वयं ही उसे सजाती है। बालों में तेल कंधी करना, टाई ठीक करना, सूट ठीक से पहनने को कहना। और यह सब करते-करते वह परेशान हो जाता है।

रविवार का दिन था। कालेज की छुट्टी थी। निशीथ प्रातः से ही अपनी पुस्तकों से उलभ रहा था कि प्रेमलता ने कमरे में प्रवेश किया। देखा तो पति आराम कुर्सी पर लेटे कोई पुस्तक पढ़ रहे थे। पास जा वह खड़ी हो गई तो निशीथ ने आँखें ऊपर उठाई, शायद पुस्तक पर पढ़ रही प्रेमलता की छाया को उसने पहचान लिया था। प्रेमलता ने पति के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—तुम दिन भर इन किताबों को ही पढ़ा करते हो या दुनिया की और किसी बात को भी सोचते हो।

‘ओह, इन किताबों से ही तो मुझे दुनिया की सारी बातें मालूम हो जाती हैं।’

प्रेमलता हँस पड़ी—बोली—अच्छा बताओ; आज हमारे यहाँ क्या खाना बन रहा है ?

निशीथ अचकचा गया। यह बात तो पुस्तकों से नहीं जानी जा सकती। सच, तो क्या पुस्तकों से बाहर भी कुछ है जिसे मनुष्य को जानना पड़ता है।

प्रेमलता खिलखिला कर हँस पड़ी तो निशीथ की विचारधारा भंग हुई, बोला—तो ठीक, अब मैं सब बातों की ओर ध्यान रखूँगा पर कल क्या यह पुस्तकें !...

‘अजी हटाओ भी पुस्तकें—पुस्तकें—’ प्रेमलता ने खिजला कर कहा।

निशीथ ने पुस्तक उठाकर रख दी। उठ कर खड़े होते हुए कहा—चलो, देखें तुमने घर का प्रबन्ध किस प्रकार किया है ?

घर की बात निशीथ भला समझेगा क्या ? यही प्रेमलता सोचती रही। फिर पति को साथ लेकर भीतर चली गई।

हाल में पहुँच निशीथ आश्चर्य में पड़ गया। इन चन्द दिनों में ही यह सब क्या से क्या हो गया; प्रेमलता ने कहा—यह हाल है, इसके लिये एक सेट कुशनकोच का आर्डर दिया है; आज्ञायगी तो यह बड़ा ही सजा दिखाई पड़ेगा।

निशीथ जाने क्या सोच रहा था, कुछ सुन बोल उठा—सजा हुआ, अँ—हां, हां, जरूर।

तभी उसकी दृष्टि सामने टंगे हुए एक भारी भरकम काले ओवर कोट पर पड़ी। निकट जा उसने उसे इधर-उधर कर देखा तो कहा—यह कोट किसका है !

‘पिता जी का है। उस दिन आये थे तो छोड़ गये थे।’

‘ओह !’ निशीथ ने कहा, फिर क्षण भर चुप रह बोला—अच्छा देखा मैं महसूस कर रहा हूँ कि मैं अपनी ‘अंधेरी माँद’ में अब अधिक दिन नहीं रह सकता।

‘क्या ?’ प्रेमलता ने आश्चर्य से पूछा।

‘कोई इतने बुरे कमरे में भी कभी रहता है। नहीं मुझे यह पसन्द नहीं।’

प्रेमलता मुस्कराती रही। वे रसोई घर के निकट आ गये थे। प्रेमलता ने खाना बनाने के लिए एक महाराजिन रख ली है। अभी नवयुवती है, बीस-इक्कीस वर्ष की वय, गोरा रंग, कुश-दुर्बल सा शरीर आखों में एक अजीब अन्दाज। पर ऐसे रूप को ले ही वह विधवा हो गई। अपनी जीविका तो चलानी ही है। प्रेमलता का दयालु हृदय पसीज उठा उसने उसे अपने यहां नौकर रख लिया। वर्तन साफ करने आदि कामों के लिए एक और नौकरानी जाने कहां से प्रेमलता पकड़ लाई है।

महाराजिन खाना बना चुकी थी सो बैठी दूसरी नौकरानी से बातें कर रही थी। प्रेमलता ने कहा—मालिक आ रहे हैं।

तो वे चौंक कर उठ खड़ी हुईं। मालिक को देखने का शायद यह पहला ही अवसर था। निशीथ का ध्यान उनकी ओर नहीं था। पर उन्होंने मालिक को एक बार देख अपनी आंखें नीची कर लीं। महाराजिन के मुख पर जैसे लजा का रंग डुलक गया हो। वह पैर के अँगूठे से धरती कुरेदने लगी।

तभी प्रेमलता ने निशीथ से कहा—यह महाराजिन विधवा है, ब्राह्मणी ठहरी। सोचिये तो यह आयु और यह विधवा !

‘हुं।’

‘और यह महरिन है। इसके पति और कई बच्चे हैं। यह दिन भर काम करके रात को अपने घर चली जाया करेगी; पर महाराजिन के लिए रहने का प्रबन्ध मैंने पीछे वाले कमरे में कर दिया है।’

‘ठीक ! पर इनके नाम भी हैं कुछ !’

नाम ! प्रेमलता को कुछ अजीब सा लगा। यह भी कोई पूछने की बात है तभी निशीथ हँस कर बोला—अच्छा, अच्छा, हम इसे—उसका इशारा महाराजिन की ओर था—बड़ी और दूसरी को छोटी कहेंगे।

महरिन हँस पड़ी, महाराजिन के गाल कानों तक लाल हो उठे। निशीथ भी हँसने लगा। पर प्रेमलता को यह सब बहुत बुरा लग रहा था।



रात जब वे सोने के लिए लेट गये तो प्रेमलता ने कहा—भोले राजा, मैं चाहती हूँ कि तुमने नौकरानियों से जो कहा था—उसे न कहा होता ।

निशीथ को प्रेमलता प्यार से 'भोले राजा' ही कहती है । निशीथ जैसे कुछ सोच रहा था फिर उसे ध्यान आ गया तो बोला—अरे वह नाम वाली बात ।

‘हां !’

‘तो इससे क्या ? नाम तो आखिर उनका कुछ होना ही चाहिये था ।’ निशीथ ने सरलभाव से उत्तर दिया ।

‘पर हमें नौकरों के सम्मुख ऐसी बातें न कहनी चाहिये ।’ प्रेमलता ने गम्भीरता से उत्तर दिया ।

‘ओह ! पर मैंने तो सोचा था कि यह सब कोई बुरी बात नहीं है । क्यों है न ।’

‘नहीं मैं ऐसा नहीं समझती ।’

निशीथ कुछ सोचने लगा तो बात-चीत का सिलसिला टूट गया ।

प्रेमलता को नींद आ गई पर निशीथ उसी प्रकार जगता पड़ा रहा । वह नौकरानियों के सम्बन्ध में सोच रहा था । आखिर बिना नाम के भी कोई रह सकता है । यह प्रेमलता अजीब है कहती है मुझे उनके सामने ऐसा न कहना चाहिए था । न कहना चाहिए था—पर क्यों ।

वह उठकर बैठ गया । उसने देखा उसके निकट ही लेटी हुई प्रेमलता सो रही है । उसके बालों की एक लट आ कर उसके कपोलों पर टिक गई थी, जैसे काले सांप का बच्चा अंगूरों का रस चूस रहा हो । बाहर चांदनी छिटकी हुई थी । पहली किरणें आकर प्रेमलता की बांहों पर फैल-फैल रही थीं जिससे उसकी चूड़ियों में जड़े नंग चमक उठे ।

निशीथ क्षण भर देखता रहा; प्रेमलता का यह सुप्त सौंदर्य उसे आज अधिक आकर्षक प्रतीत हो रहा था । उसने कपोलों पर टिकी

बालों की लट को हटा दिया, उसकी आंखें अनिमेष उसकी ओर निहार रही थीं। वह सोच रहा था—

वह प्रेमलता.....मेरी पत्नी है। श्वास-प्रश्वासों से उसका वह उभरा यौवन किस प्रकार ऊपर नीचे हो रहा है। यौवन की कितनी ही रातों को वह अकेलेअपने कमरे के एकान्त में शायद बिता चुकी है पर आज यह 'मेरी है—हाँ, मेरी, शरीर और आत्मा दोनों से।

उसका हृदय भावुक हो उठा; एक नमी सी भर गई जिसके वाष्पकण उसकी आंखों में छलक आये। यह जीवन भी क्या है! क्या कभी किसी ने सोचा है। दो प्राणी अनजाने से ही तो एक साथ एक ही तरणी पर बैठते हैं। भ्रंभातृफान या शान्त सागर की लोल लहरियों के बीच उनकी वह तरणी उन्हें ले जाती है दूर, बहुत दूर—

प्रेमलता ने करवट ली।

निशीथ की विचारधारा भंग हो गई। पत्नी के जगने की आशंका से वह संकुचित हो उठा। यदि प्रेमलता इस समय जाग जाय और उसे इस प्रकार अपनी ओर टकटकी लगाये देखे तो क्या सोचेगी।

पर प्रेमलता जगी नहीं तो उसकी विचारधारा फिर बह निकली। सहसा जाने क्यों उसे नौकरानियों वाली घटना स्मरण हो आई। उसकी पत्नी कहती है कि उसे उनके नाम की बात न कहनी चाहिए थी।

नाम !

उसे अपनी पत्नी की बात पर हंसी आ गई—खिल-खिल !

जीवन में कितनी बार इस प्रकार वह हंस सका है।

प्रेमलता जग गई। निशीथ को हँसते देख पूछा—क्या बात है जो हँस रहे हो ?

वह अपनी साड़ी संभालने लगी। निशीथ क्या उत्तर दे। कैसे कहे कि छोटी-बड़ी की बातें सोच उसे हँसी आ गई। सो उसने उत्तर दिया—कुछ नहीं।

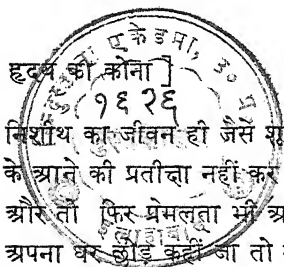
और वह फिर लेट गया। प्रेमलता क्षण भर पति की ओर आश्चर्य से देखती रही फिर आंखें मूंद सो गई।

निशीथ और खिसक आया। पत्नी का सामीप्य उसे आज एक विशेष प्रकार का सुख दे रहा था।

### [ ५ ]

वर्षा की प्रथम फुहार पड़ चुकी थी। निशीथ के कालेज में आज मीटिंग थी। इस लिए वह चला गया था। प्रेमलता अकेली बैठी हुई बाहर की प्रकृति की ओर देख रही थी। गर्मी के आतप ने जैसे पृथ्वी के हृदय के समस्त रक्त को सुखा दिया हो; कितनी नीरस हो उठी है यह वसुधा। प्रेमलता देखती रही। वर्षा ने गुलाब की इन मटमैली पत्तियों पर जमी हुई गर्द को धो दिया है। सूखी धरती पर वर्षा की बूंदें इस प्रकार विलीन हो गई हैं जैसे धरती को इतने जीवन से तृप्ति न हुई हो। रसकी प्यास हृदय में तृप्ति नहीं प्रदान करती; वह तो प्रत्येक क्षण बढ़ती ही जाती है। जो कुछ हम जीवन में पा लेते हैं उससे तृप्ति नहीं होती। अप्राप्य की मृग-मरीचिका निरन्तर हमें अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। जो अप्राप्य है उसमें मनुष्य आकर्षण का अनुभव करता है।

प्रेमलता बैठी हुई सोच रही थी; उसकी विचार धारा भावुकता की उतुंग लहरों के साथ फूल पर अपना शीश पटक रही थी। निशीथ के साथ रहते उसे अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ पर इसी बीच में जैसे उसने निशीथ के अन्तर का पूरा अनुभव कर लिया हो। निशीथ ने उसे पत्नी के रूप में पूर्णरूपेण अपने में भर लिया है; उस पर ही उसने अपने को बिलकुल आश्रित कर दिया है; उसका जीवन जैसे प्रेमलता पर ही अवलंबित होकर रहना चाहता है। अन्यथा वह निराश्रित सा रह जाता है। प्रेमलता को वह कहीं आने-जाने से रोकता नहीं पर अभी पिछली बार जब वह दो दिन के लिए अपनी बुआ के यहाँ चली गई तो



निशीथ का जीवन ही जैसे शून्य हो उठा। अधिक देर तक वह प्रेमलता के आने की प्रतीक्षा नहीं कर सका। दूसरे ही दिन वह वहाँ पहुँच गया और तो फिर प्रेमलता भी अधिक समय तक न रुक सकी; यह निशीथ अपना घर छोड़ नहीं जा तो नहीं सकता।

किन्तु कभी-कभी प्रेमलता को अपने इस मोह भरे जीवन में एक अभाव अखरने लगता है। आज सुबह ही तो नीरा आई थी। उसके साथ प्रेमलता की शैशव की पहिचान है; दोनों ने कितने ही वर्ष एक साथ घुलमिल कर व्यतीत किये हैं। अभी हाल में ही उसका विवाह हुआ है; पहली बार पति के घर से लौटी है सो प्रेमलता से मिलने चली आई। अपने पति की बातें बताती रही। प्रेमलता जानती है कि निशीथ उसे जितना प्यार करता है उससे अधिक कोई स्त्री अपने पति से आशा कर ही नहीं सकती। किन्तु नारी में यौवन की बेला में पत्नी नहीं प्रेमिका बनने की चाह उभर कर रहती है। पति से वह आशा करती है किसी दूसरे प्रकार के प्यार की। वह चाहती है कि विवाह के पूर्व की रंगीनियों से पूर्ण प्रेम वह पति से प्राप्त करे। यही अभाव प्रेमलता अनुभव कर रही है। निशीथ के निकट वह प्रेमिका बन कर पहुँचना चाहती है पर निशीथ को उसकी इस भावना की जैसे समझ ही न हो। कभी-भी तो उसने प्रेम में भर उसके अधरों को गर्म नहीं कर दिया। उसके चुम्बन में प्रेमलता एक प्रकार की शीतलता का अनुभव करती है किन्तु वह चाहती है सदैव ही वह गर्म सा जलता यौवन का उन्माद।

उस दिन की घटना उसे याद हो आई। प्रेमलता ने पति से सिनेमा चलने के लिये आग्रह किया। निशीथ को यह सब पसन्द नहीं। कहता है यह तो समय नष्ट करना हुआ पर प्रेमलता का आग्रह वह टाल भी नहीं सकता, सो जाना उसने स्वीकार कर लिया। उस दिन प्रेमलता के प्रसन्नता का ठिकाना न था। बड़ी देर से वह अपने श्रृङ्गार में लगी रही। सबसे अच्छी साड़ी उसने पहनी और जब वह तैयार होकर निशीथ के

निकट आई तो उसे आशा थी कि निशीथ उसको देख प्रसन्न हो उठेगा, उसके सौंदर्य की प्रशंसा करेगा और एक बार उठ उसके अधरों को चूम लेगा। किन्तु उसे निराश होना पड़ा। निशीथ किसी पुस्तक में उलझा था। पत्नी को देख उसने कहा—कहो, चलने का समय हो गया क्या ?

क्या उत्तर दे प्रेमलता। चुप रही, फिर बोली—तो तुम तैयार हो जाओ।

निशीथ सोचता है तैयार क्या वह हो। कपड़े तो वह पहने ही हैं। पर उठकर कपड़े पहनने लगा तो प्रेमलता ने कहा—तुमने मेरी यह साड़ी नहीं देखी !

निशीथ ने उसकी ओर देख कर कहा—ओह, यह साड़ी नई है क्या ?

‘हां, अभी उस दिन तो लाई थी; पर तुम तो कभी देखते ही नहीं।’ वह मुस्करा उठा, बोला—बहुत अच्छी है।

किन्तु प्रेमलता जो चाहती थी वह उसने न कहा, न किया। अपने सौंदर्य की प्रशंसा प्रत्येक स्त्री सुनने को लालायित रहती है और पति ही उसके सौंदर्य की प्रशंसा न करे तो.....

प्रेमलता सोच रही थी। फिर एक निश्वास भर वह उठी। बरामदे में थोड़ी देर तक टहलती रही फिर मन में आया कि थोड़ा बाहर तक टहल आये। आकाश की ओर देखा। बादल बिखर चुके थे, छोटे-छोटे टुकड़े इधर-उधर आकाश में भाग रहे थे। जैसे उनका कोई आश्रय खो गया हो जिसे पा जाने के लिए ही वे भाग रहे हों। जीवन का सत्य बादलों के इस कार्य के मिस प्रकट हो रहा था।

भीतर जा उसने महाराजिन से कहा—मैं तनिक टहलने जाती हूँ। यदि वे आ जायें तो उन्हें खिला-पिला देना।

वह सड़क पर निकल गई। प्रकाश से सड़क जगमगा उठी थी। नगर का यह भाग निर्जन है। धनी लोग इधर रहते हैं जिनके घर में ही

आमोद-प्रमोद की सारी सामग्री रहती है; काम तो जैसे उन्हें होता ही नहीं; सो बाहर निकलने की आवश्यकता का भी वे अनुभव नहीं करते शायद। आगे-आगे एक दम्पति टहलते हुए चले जा रहे थे। उनके हँसने की ध्वनि से प्रेमलता के कान मुखरित हो रहे थे। वह सोच रही थी कि कितने सुखी हैं यह लोग जो इस प्रकार.....किन्तु नहीं, वह यह क्या सोच रही है, प्रत्येक समय इसी प्रकार सोचती रही तो वह अपने हृदय में एक असंतोष को स्थान दे देगी। वह बाईं ओर की सड़क पर मुड़ गई और दम्पति आगे बढ़ते गए। शायद दोनों का मार्ग ही भिन्न है, प्रेमलता ने सोचा।

वह बहुत दूर तक निकल गई तभी सहसा चौंक कर खड़ी हो गई। जान पड़ा जैसे उसके निकट ही कोई बाइसिकल खड़खड़ा कर रुक गई हो। विचारों के भार से लदी पलकें उसने ऊपर उठाईं; देखा, पर पहचान न सकी। यह आकृति उसके हृदय में कभी उतर सकी है यह वह अवश्य कह सकती है पर इस समय उसे जैसे वह पहचान न पा रही हो। एकटक देखती रही तो सामने खड़े युवक ने कहा— आपने मुझे पहचाना नहीं क्या मिसेज प्रेमलता ?

प्रेमलता ने पहचान लिया। यह है कांतिकुमार। किसी समय प्रेमलता ने अनुभव किया था कि वह कांतिकुमार को प्रेम करने लगी है। उसकी ओर वह अनजाने में बढ़ती जा रही थी पर जाने क्यों उसके सम्मुख अपने भावों को प्रकट करने का उसका कभी साहस न हुआ। और ! और कांति ने भी तो कभी प्रयत्न नहीं किया प्रेमलता के भावों को पहचानने का, उसकी थाह लेने का।

तभी एक दिन उसके पिता के पास आया निशीथ। तब नया-नया ही वह कालेज में नौकर होकर आया था। निशीथ के पिता डाक्टर शिवाधार के परिचित थे। इसलिए निशीथ आते ही डाक्टर साहब से मिलने के लिए आया। और उस प्रथमक्षण में ही जब प्रेमलता सब के लिए प्यालों में चाय ढाल रही थी, तो उसने अनुभव किया जैसे कोई

उसके हृदय से कुछ खींच रहा है। कुछ दर्द सा उसे अनुभव होने लगा। यह भोला सा अस्तव्यस्त निशीथ उसे बड़ा प्रिय सा लगा और फिर उस मोह को वह समेट न सकी। निशीथ फैल कर उसके हृदय में रहने लगा। कांति की बात वह भूल गई।

अब वह निशीथ की पत्नी है। जब से उसके जीवन में निशीथ ने प्रवेश किया तब से पहली ही बार वह कांतिकुमार को देख रही है। उसे आश्चर्य हो रहा था। वह बोली—पहचाना क्यों नहीं मिस्टर कांतिकुमार ! पर बहुत दिन बाद देख रही हूँ आपको।

‘जी हाँ, बहुत दिन बाद ! और ये दिन मुझे और भी लम्बे.....’ कहते-कहते वह रुक गया। प्रेमलता ने कोई उत्तर न दिया।

एक मोटर आ रही थी। हार्न सुन वे सड़क के किनारे हो गए तो कांतिकुमार ने कहा—आप किधर जा रही थीं चलिए न !

प्रेमलता के पग डोल उठे पर वह चुप थी, कांतिकुमार साथ चल रहा था। मार्ग में कांति ने बताया कि यूनीवर्सिटी छोड़ने के बाद उसने अपने को सामाजिक तथा राष्ट्रीय कार्य के लिए सौंप दिया। पिछले वर्ष उसे सत्याग्रह आंदोलन के सम्बन्ध में छः महीने की सजा हो गई थी। अभी हाल में जेल से छूट कर आया है तो अब वह रचनात्मक कार्य करना चाहता है।

बड़ी देर तक बातें होती रहीं तो प्रेमलता ने अनुभव किया कि कांति जैसे किसी बात को जी में दबाकर रख रहा है। पहले का कांति अब वह नहीं रह गया। कितना परिवर्तन हो गया है उसमें। अनुभव की रेखाएँ उसके मस्तक पर खिंच गई थीं। लौट कर जब प्रेमलता अपने बंगले के सामने आ गई तो कांतिकुमार ने विदा लेते हुए कहा—अच्छा मिसेज प्रेमलता; अब मैं चलता हूँ। आप से मिलकर मुझे आज बहुत ही सुख मिला।

प्रेमलता क्षण भर उसकी ओर देखती रही फिर बोली—फिर कब आइएगा ?

‘आने का अपना कौन ! किसी भी दिन आ सकता हूँ।’ कह कर कांतिकुमार ने अपनी बाइसिकिल को संभाला, नमस्ते के लिए हाथ उठाये और फिर बाइसिकिल में गति आ गई। प्रेमलता खड़ी हुई यह सब देख रही थी। कांतिकुमार की बाइसिकिल आगे बढ़ गई फिर भी वह अपने बंगले के द्वार पर खड़ी हुई उसे देखती रही। सड़क पर लगे हुए बिजली के खम्भों से प्रकाश के बल्व लटक रहे थे और उस प्रकाश में कांति की एक छाया प्रेमलता से दूर भागती जा रही थी, दूर और दूर !

आगे जाकर वह चौराहा है। कांति उधर को मुड़ गया तो प्रेमलता ने एक निश्वास ली और बंगले के भीतर चल पड़ी.....

\*

\*

\*

निशीथ जब कालेज की मीटिंग से लौटा तो देखा बाहर कोई नहीं है। उसने प्रेमलता को आवाज दी। आवाज सुन महराजिन तुरन्त ही बाहर आई। महराजिन को उसने कहीं भेजा था। हाल में निशीथ टहल रहा था। जब कभी वह कहीं से आता है तो प्रेमलता तुरन्त ही उसके पास आ जाती थी पर इस समय जब वह न आई तो निशीथ को आश्चर्य हुआ।

महराजिन आकर खड़ी हो गई तो निशीथ ने उसकी ओर देखा फिर हंस कर कहा—अच्छा, बड़ी, तुम हो, बहू जी कहाँ गईं ?

लजाकर ‘बड़ी’ ने उत्तर दिया—बहू जी टहलने गई हैं; कह गई हैं कि आप आ जायें तो आपको.....

निशीथ ने बीच में ही बात काटी—हां, हां, अपना काम वह तुम्हें सौंप गई हैं। ठीक, बहुत ठीक।

फिर जाने क्या सोच निशीथ बहुत जोर से हँस पड़ा। महराजिन लजाकर भीतर चली गई और निशीथ कपड़े उतारने लगा।

थोड़ी देर बाद महराजिन फिर आई, बोली—आप खाना यहाँ खायेंगे या चौके में।



चौके में भोजन निशीथ कभी नहीं करता । कुछ अजीब ही उसका स्वभाव है पर आज उसने जाने क्यों कह दिया—नहीं, चौके में ही करूंगा ।

महराजिन ने एक बार आश्चर्य से निशीथ की ओर देखा; जैसे वह निशीथ के सब कार्य में किसी गूढ़ रहस्य को पाने का प्रयत्न कर रही हो । चाहती वह भी है कि निशीथ चौके में ही भोजन करे पर आज तक निशीथ को जैसे इसका कोई पता ही न हो कि उसे खिलाने के लिए प्रेमलता के अतिरिक्त और भी कोई चिन्तित रहता है । रहता है तो रहता होगा; उसको इसकी क्या परवाह ! महराजिन ने एक बार निशीथ की ओर देखा; अधरों पर मुस्कान की एक मधुर रेखा खींच वह तुरन्त ही कमरे से बाहर जाते हुए बोली—तो मैं थाली लगा रही हूँ ।

निशीथ ने कोई उत्तर न दिया पर महराजिन के पीछे वह रसोई-घर के ओर बढ़ गया ।

जब तक वह खाता रहा । महराजिन उसे देखती रही । जब से वह इस घर में आई है इसे अपना सा ही समझती है । प्रेमलता को महराजिन पर बहुत विश्वास है । पर जाने क्यों उसे निशीथ के प्रति बड़े अपनापे का अनुभव होता है; चाहती है वह कि निशीथ की जितनी भी सेवा वह कर सके करे पर अवसर उसे मिलता ही नहीं । निशीथ का सब कुछ तो प्रेमलता स्वयं ही कर देती है । सो आज के इस अवसर से ही जैसे वह सन्तोष कर लेना चाहती है ।

खाते-खाते जैसे निशीथ को ध्यान आ गया, पूछ पड़ा—बड़ी, तुम्हारे पति कब मरे थे ?

एक बीती सी स्मृति महराजिन के मस्तक पर खिंच गई । यहां आ जो भूल रही थी जैसे उसी को किसी ने उकसा दिया हो । उसी प्रकार निशीथ की ओर देखते हुए उसने उत्तर दिया—दो वर्ष हो रहे हैं ।

‘दो वर्ष...’ निशीथ ने कहा । पर महराजिन को लगा जैसे वह कह रहा हो—दो वर्ष बिना किसी पुरुष के यह महराजिन रह कैसे सकी है ।

गिलास उठा कर पानी का एक घूंट पी उसने कहा—तो तुमने दूसरा विवाह क्यों नहीं किया ?

महराजिन ने कोई उत्तर न दिया तो जैसे उसे सहसा कुछ ध्यान आ गया—बोला—ओ मैं भी क्या कह गया ! तुम तो ब्राह्मण हो तुम्हारे यहाँ दूसरा विवाह होता जो नहीं ।

खाना खा वह अपने कमरे में जाकर लेट रहा, कुछ सोचता हुआ सा । महराजिन सोचती है कि उसका जीवन इतना तुच्छ है कि वह किसी के भी लिए सोचने-विचारने की वस्तु नहीं हो सकती । कोई उसकी बात को ले अपने मस्तिष्क को थकाये क्यों । पर आज निशीथ को इस प्रकार विचारमग्न देख महराजिन को लगा जैसे वह 'उसी के सम्बन्ध में सोच रहा हो । महराजिन के हृदय में एक विचित्र से भाव का उदय हुआ ! वह रसोई में बैठी थी पर आंखों के सम्मुख एक दूसरे संसार की कल्पनायेँ हिलोरें ले रही थीं, बिल्ली आकर दूध पी गई पर उसमें जैसे बिल्ली की रोकने की शक्ति न थी; महरिन बाहर से लौट आई थी; महराजिन को आज इस प्रकार विचार में निमग्न देख उसे भी आश्चर्य हो रहा था; सामने थाली पड़ी थी, कोई खा चुका है । और कौन होंगा बहू जी होंगी । सोच थाली साफ करने को उठाते हुए उसने महराजिन से कहा—महराजिन दीदी ! कहां विचर रही हो ?

पर जब कोई उत्तर न मिला तो वह थाली उठा चली गई ।

आइट पा महराजिन संभली; इस तरह विचारमग्न देख उसे कोई क्या कहेगा ?

देखा तो प्रेमलता द्वार पर खड़ी थी, पूछा—महराजिन उन्होंने खाना खा लिया ।

‘जी हाँ !’

बिना कुछ अधिक कहे प्रेमलता वहाँ से चली आई । पति के कमरे में जा कर देखा तो वह अपनी पुस्तकों की अल्मारी की ओर बड़े ध्यान से देख रहे थे । प्रेमलता के आने का उन्हें पता ही न लगा । प्रेमलता

दबे पांव चुपके से पति के पीछे जा कर खड़ी हो गई, पर निशीथ को कुछ पता नहीं।

तभी प्रेमलता ने पति के कंधे पर अपनी हथेलियां रख दीं।

निशीथ ने घूम कर देखा; फिर हँसने लगा। पति की हँसी आज प्रेमलता को अजीब सी लगी। निशीथ ने दूसरा प्रश्न किया—प्रेम, स्त्री दूसरा विवाह क्यों नहीं कर सकती ?

इस सयय इस प्रश्न को सुन कर प्रेमलता को आश्चर्य हुआ। शायद पति इस प्रश्न को लेकर बड़ी देर से विचार कर रहे थे। वह मुस्कराती हुई पति के पास ही बैठ गई तो निशीथ ने फिर वही प्रश्न किया। इस बार प्रेमलता ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—इसलिए कि वह कर ही नहीं सकती।

‘क्या कर ही नहीं सकती ? विवाह नहीं करती; कौन रोकता है ?’

‘कोई रोकता नहीं पर चाहती तो वह नहीं। उसका यह बन्धन हृदय का है समाज का नहीं।’

‘ओह ! तो वह चाहती नहीं।’.....वह सोचता रहा।

प्रेमलता ने क्षण भर बाद कहा—वह जिसे एक बार प्रेम कर लेती हैं उसे ही सदैव करती हैं; और दूसरा विवाह करने पर दूसरे को जो प्रेम करना पड़ता है।.....

निशीथ सोचता रहा। और यदि वह मर जाय तो प्रेमलता भी विवाह न करेगी किन्तु वह जानता है कि प्रेमलता बिना किसी पुरुष के रह ही नहीं सकती। और यदि वह उसको प्रेम न करे तो शायद दूसरा विवाह करने में उसे कठिनाई न हो। तो वह प्रेमलता से दूर रहेगा, जिससे वह उसको अधिक प्रेम न करे।

पति को सोचते देख प्रेमलता ने पूछा—क्या सोच रहे हो ?

निशीथ ने उत्तर दिया—सोचता हूँ अब मैं इस कमरे में नहीं रहूँगा। यह तुम्हारा कमरा है। मैं बाहर वाले कमरे में रहूँगा। किताबों की यह आलमारी उसी कमरे में पहुँचा देना।

प्रेमलता ने आश्चर्य के साथ पति की ओर देखा । आज यह सब हो क्या रहा है । जब से उनका विवाह हुआ है वे एक ही कमरे में रहते आये हैं । प्रेमलता जानती है कि पल-पल पर निशीथ को उसकी आवश्यकता पड़ती है इसलिए उसने अपने रहने के लिए बंगले का सबसे बड़ा कमरा चुना था । निशीथ की सभी आवश्यकता की चीजें वह इसी कमरे में रखती है । पर आज निशीथ कहता है कि वह अपनी किताबों की आलमारी बाहर के कमरे में रखेगा ।

पर उसने कहा—हां, यह तो ठीक है तुम्हें अपनी एक 'स्टडी' अलग चाहिये !

निशीथ ने पत्नी की ओर देखा, फिर कहा—नहीं 'स्टडी' को मैं अपने कमरे के बाहर नहीं रख सकता । मैं एक ही कमरे में सब कुछ चाहता हूँ ।

'तब फिर इस कमरे को छोड़ने से लाभ ?'

इस पर निशीथ बड़े जोर से हँसा; प्रेमलता अप्रतिभ सी हो उठी निशीथ ने कहा—तुम्हीं तो कहती हो कि यह कमरा मेरी 'अंधेरी मांद' है । तो इस मांद से मुझे अब निकलना चाहिये न !

प्रेमलता सोचती रही तो क्या 'मांद' से निकल कर निशीथ उसके हाथ से जा रहा है । किन्तु कभी तो निशीथ ने कमरे से असन्तोष नहीं प्रकट किया आज सहसा उसे हो क्या गया है । वह स्वयं ही बहुत परेशान हो रही थी ।

उसने फिर कहा—यदि तुम्हें यह कमरा पसन्द न हो तो हम कोई दूसरा कमरा चुन लें ।

'नहीं, मैंने चुन लिया है । बाहर का कमरा ही मेरे लिए ठीक होगा । तुम इसी में रह सकती हो ।'

प्रेमलता ने कोई उत्तर न दिया निशीथ की ओर वह ध्यानपूर्वक देख रही थी । पति में यह सहसा परिवर्तन उसे अधिक दुःखदायी प्रतीत हो रहा था ।

प्रेमलता ने कोई उत्तर न दिया वह चुप बैठी रही ।

दूसरे दिन जब निशीथ कालेज चला गया तब प्रेमलता ने उसका सारा सामान उठवा कर बाहर वाले कमरे में रखा दिया। सब सामान उसने करीने से लगवा दिया। निशीथ की पलंग को भी उसने कमरे में रखा दिया।

शाम को जब निशीथ कालेज से आया तो बाहर के कमरे में ही अपना सामान रखा हुआ देख उसे प्रसन्नता हुई। हाल में गया तो देखा प्रेमलता उदास बैठी है। मुस्कराते हुये उसने कहा—प्रेम, तुम सचमुच बहुत अच्छी हो। अब ठीक है। मुझे एक किताब लिखनी है न, सो बाहर का कमरा ठीक होगा।

‘हूँ’ प्रेमलता ने उत्तर दिया पर वह सोच कुछ और ही बात रही थी। थोड़ी देर बाद उसे ध्यान आया निशीथ चाय पियेगा। उसने तुरन्त ही महाराजिन को आवाज दी। नौकर बाग में काम कर रहा था सो महाराजिन को ही चाय की ट्रे लेकर आना पड़ा।

निशीथ चाय पीता रहा पर उसने प्रेमलता से कोई बात न की। चाय समाप्त हो गई तो निशीथ उठकर अपने नये कमरे में चला गया। प्रेमलता उसी प्रकार बैठी रही शून्य की ओर निहारती हुई.....

---

## [ ६ ]

अपनी मंजिल पर पहुँच कर पथश्रम से थका राही क्षण भर बैठ कर अपनी यात्रा के विचार में भूल जाता है और उस समय उसे अपने पथ के अनेक ‘लैंडमार्क’, जिनका अनुभव यात्रा करते समय उसे नहीं हो सकता, उभर उठते हैं। पथ के कितने ही मोड़ आये पर कभी तो वह राही यह सोचने के लिए नहीं रुका कि पथ में यह थोड़ा सा भुकाव उसे अपनी मंजिल से कितनी दूर लेकर पहुँचा देगा। कितनी ही बार हम जीवन में भी तो यही करते हैं।

निशीथ अपने जीवन के मार्ग पर चला जा रहा था, मंजिल से वह कितनी दूर है, कितनी दूर होता जा रहा है, यह सब उसने कभी न सोचा और यही बात थी प्रेमलता में। पर प्रेमलता समझती है कि निशीथ के कमरा बदलने वाली घटना ही 'लैंडमार्क' है। है या नहीं, पर होकर रहेगी; ऐसा जैसे उसकी 'नारी' ने निश्चित कर लिया था। उस दिन के बाद प्रेमलता ने देखा कि निशीथ उसकी ओर से दिन पर दिन उदासीन होता जा रहा है। अधिकांश समय वह पुस्तक पढ़ने या लिखने में व्यतीत करता है। उसकी एक पुस्तक प्रकाशित भी हुई है; कालेज के विद्यार्थियों के लिए पाठ्य पुस्तक बना दी गई। निशीथ को अपनी सफलता पर गर्व है; वह समझता है कि उसकी पुस्तक बहुत ही महत्वपूर्ण है, प्रेमलता से भी वह यही सुनने की आशा रखता है किन्तु प्रेमलता बहुधा हंस कर कहती है—अरे, तुमने भी क्या लिखा? सारा ज्ञान एक स्कूली पुस्तक में लगा दिया।

प्रेमलता की बातों से जाने क्यों निशीथ यह अनुभव करने लगा है कि स्कूली पुस्तकें कभी महत्वपूर्ण नहीं हो सकतीं, आखिर बच्चों के लिए ही तो वे लिखी जाती हैं। उसे जान पड़ा जैसे बोर्ड ने उसकी पुस्तक को स्वीकृति करके उसका अपमान किया है, जैसे उसकी पुस्तक के महत्व को किसी ने समझा ही न हो। और जब प्रेमलता उससे ऐसा कह देती है तो वह अत्यन्त लुब्ध हो उठता है। परमन के भावों पर नियन्त्रण रखने में वह अत्यन्त कुशल है। कभी उसने प्रेमलता पर अपने भाव प्रगट नहीं होने दिये। सदैव ही वह प्रेमलता की बात पर हंस देता जैसे वह उसे मूर्ख समझता हो कि वह उस पुस्तक को समझ ही नहीं सकती। पति का यह भाव प्रेमलता से छिपा नहीं था। वह जानती थी निशीथ उसको किस दृष्टि से देखता है पर कभी उसने पति से इसकी शिकायत नहीं की। जाने क्यों निशीथ को कोई भी बात अब प्रेमलता को सुख या दुःख पहुंचाने में असमर्थ रहती है।

कांतिकुमार की कहानियों का संग्रह 'भिलमिली' प्रकाशित हो गया है। उस दिन प्रेमलता बाजार गई थी तो पुस्तक विक्रेता के यहां वह मिल गई। लेखक के स्थान पर कांतिकुमार का नाम देखकर उसने उसे खरीद लिया।

बंगले पर पहुँचते ही उसने देखा निशीथ अपने कमरे में बैठा है, ज़रा भर वह रुकी, फिर आकर पति के निकट बैठ गई।

निशीथ ने उसकी ओर देखा, बोला—कहो प्रेम, कहाँ से आ रही हो ?

‘बाजार गई थी।’ प्रेमलता ने बैठते हुए उत्तर दिया।

पुस्तक देख निशीथ ने पूछा—यह कौन सी किताब है।

प्रेमलता ने पुस्तक को पति के हाथों में दिया—बोली—कहानी संग्रह है। इसके लेखक मेरे परिचित हैं—बड़े ही समाज सेवी और राष्ट्रीय विचारों के व्यक्ति हैं। यह कहानियाँ बहुत ही सुन्दर हैं।

निशीथ ने पुस्तक उसी प्रकार रख दी बोला—प्रेम, जिस वस्तु की कोई उपयोगिता न हो उसके सुन्दर असुन्दर होने से क्या ?

‘क्या अभिप्राय है तुम्हारा ?’ प्रेमलता ने प्रश्न किया।

निशीथ विवाद बहुत कम करता है, पर आज जैसे वह विवाद के लिए उत्सुक हो, बोला—यह कहानियाँ और उपन्यास, इनसे मनुष्य का कोई लाभ नहीं होता, हम उन्हें केवल मनोरंजन के लिए पढ़ते हैं और जो भी समय मनोरंजन में व्यय होता है, उसकी कोई उपयोगिता नहीं होती।

प्रेमलता ने उत्तर दिया—तो क्या कहानी इत्यादि का साहित्य में कोई स्थान ही नहीं ?

‘है क्यों नहीं, परन्तु प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता के अनुसार ही तो उसका महत्व होता है।’

प्रेमलता ने अधिक विवाद करना उचित न समझा। वह चुप हो गई। निशीथ ने पुस्तक को इधर-उधर से देखकर कहा—इस प्रकार की

पुस्तकें प्रकाशित कर लोग राष्ट्र की सम्पत्ति का नाश करते हैं—इतना कागज, इतनी स्याही, इतना परिश्रम—ओह !

पुस्तक उसने फिर प्रेमलता को दे दी । प्रेमलता क्षण भर बैठी रही फिर उठ कर अपने कमरे में चली आई । बड़ी देर तक वह निशीथ की बातों पर विचार करती रही, 'जिस वस्तु की जितनी उपयोगिता होती है उतना ही उसका महत्व होता है।' निशीथ का यह वाक्य बारबार उसे स्मरण सा हो रहा है । वह अनुभव कर रही है कि निशीथ अब उससे दूर-दूर रहने लगा है शायद उसके निकट उसकी उपयोगिता बहुत थोड़ी है ।

पुस्तक को हाथ में लिए वह खोलती रही । यह कांति प्रातः-किरण सा उसके जीवन में प्रथम बार आया था; ओस के कण की भांति विलीन हो गया पर वर्षा के अङ्कुर के भांति वह उसके हृदय में खड़ा है कुछ चुभता सा, एक तेज सा दर्द देता सा । पर आज वह उसके निकट से भी कितनी दूर हो चुका है । कांतिकुमार बहुधा प्रेमलता से मिलने आता है किन्तु न तो कभी प्रेमलता ने उसके साथ निशीथ का परिचय कराने का प्रयत्न किया और न कभी कांति ने ही इच्छा प्रकट की । प्रेमलता अनुभव कर रही है कि कांति की ओर वह बराबर आकर्षित होती जा रही है । निशीथ की ओर उसका ध्यान अब कम रहने लगा है । सारा काम अब महराजिन ही निशीथ का कर देती है ।

निशीथ खाना खाकर टहलने के लिए चला गया, पर प्रेमलता उसी प्रकार अपने कमरे में बैठी रही । उसकी इच्छा इस समय कुछ भी करने की नहीं हो रही थी । महराजिन से कह दिया वह इस समय भोजन नहीं करेगी, सो वह चली गई ।

कुर्सी से उठ वह थोड़ी देर तक कमरे में टहलती रही, फिर आकर अपने बिस्तर पर लेट गई । कितनी देर तक वह विचारों में मग्न बैठी रही, इसका उसे स्वयं पता नहीं । सहसा बाहर किसी के आने की आहट पा उसने सिर उठा कर खिड़की के बाहर देखा । निशीथ था,



‘पोर्टिको’ में आ आवाज दी, तो महराजिन अपनी कोठरी से उठ दरवाजा खोलने गई पर प्रेमलता उसी प्रकार पड़ी रही।

आज निशीथ बहुत देर तक बाहर टहलता रहा था। महरिन देर होते देख, चली गई। नौकर आज दोपहर ही को घर चला गया था। महाराजिन अकेली थी सो बाहर का दरवाजा बन्द कर सब काम से अवकाश पा अपने कमरे में जा लेटी थी।

महाराजिन ने दरवाजा खोल दिया; निशीथ प्रवेश कर ही रहा था कि महाराजिन ने कहा—आज आपने बड़ी देर कर दी।

विजली निशीथ ने कमरे की जला दी, अधरों पर उसके हँसी खेल गई, बोला—ओह बड़ी, हाँ, आज देर हो गई। टहलता हुआ बहुत दूर चला गया। कुछ ध्यान ही न रहा और फिर जब लौटा तो देर हो गई।

महाराजिन को निशीथ की बातों पर हँसी आ गई। वह हँसती रही तो निशीथ उसकी ओर इस प्रकार देखता रहा जैसे उसके हंसने का अभिप्राय वह समझ न पा रहा हो।

प्रेमलता ने महाराजिन के हँसने की ध्वनि सुनी; उसे आश्चर्य हुआ, थोड़ी देर तक वह सोचती रही; फिर आँखें बन्द कर सोने का प्रयत्न करने लगी।

परन्तु दूसरे दिन प्रेमलता ने निश्चय किया कि वह महाराजिन को अलग कर देगी। कोई और नौकरानि रख लेगी। सो दूसरे दिन प्रातः जब वह चाय पी रही थी तो सहसा उसने निशीथ से कहा—मैंने महाराजिन को अलग कर देने का निश्चय किया है।

‘क्यों?’ निशीथ ने आश्चर्य-चकित हो पूछा।

‘व्यर्थ है, कोई पहाड़ी नौकर होगा तो सब काम करेगा।’

‘पर उस बेचारी का निर्वाह कैसे होगा?’

प्रेमलता क्षण भर चुप रही, फिर बोली—कहीं न कहीं उसे नौकरी मिल ही जायगी।

निशीथ ने कुछ उत्तर नहीं दिया, पर जब चाय समाप्त कर वह प्याला रख रहा था तो बोला—देखो महाराजिन को अलग करने की आवश्यकता नहीं पर यदि तुम समझो तो एक पहाड़ी नौकर रख सकती हो।

उठ कर बाहर चला गया। प्रेमलता उसी प्रकार देखती रही। घर के प्रबन्ध में भी कभी निशीथ कुछ हस्तक्षेप करेगा यह प्रेमलता को आशा न थी। सहसा उसे कल रात महाराजिन के हँसने की बात याद आ गई। वह क्षण भर सोचती रही फिर उठ कर अपने कमरे में चली आई।

उस दिन उसका जी बहुत उदास रहा। निशीथ कालेज चला गया। दोपहर को कांतिकुमार आया तपा सा, थका सा। प्रेमलता हाल में आ गई। कांति को देख बोली—बहुत थके दिखाई पड़ते हैं आपका मुंह सूख सा रहा है।

कांति के शुष्क अधरों पर मुस्कान की एक रेखा खिंच गई, बोला—बड़ी देर से प्यास लगी है। प्रातः का ही निकला हूँ। मजदूरों का संगठन करना था। वहीं से आ रहा हूँ !

प्रेमलता ने तुरन्त ही महरिन को जलपान लाने के लिए पुकारा।

जलपान कर चुकने पर कांति ने कहा—मिसेज प्रेमलता, हम लोगों का जीवन बहुत ही कठिन होता है।

‘हां, पर मैं तो समझती हूँ जीवन यही है।’

कांति मुस्कराया, पर कहा उसने कुछ नहीं। तभी प्रेमलता ने कहा—मिस्टर कांतिकुमार तुम्हारे जीवन से जब मैं अपने निष्क्रिय जीवन की तुलना करती हूँ तो जी में एक क्षोभ उत्पन्न होता है।

कांति की आँखों से एक विचित्र प्रकाश-किरण निकल कर प्रेमलता के अन्तर में विलीन होगई। कांतिकुमार ने कहा—यदि भारत की प्रत्येक नारी इतना भी अनुभव कर ले तो बहुत कुछ किया जा सकता है।

प्रेमलता क्षण भर सोचती रही फिर बोली—यदि आप मुझे पथ-प्रदर्शित करें तो स्त्री जाति में जागृति उत्पन्न करने का प्रयत्न करूँ !

प्रसन्नता से कांति का मुखमण्डल चमक उठा, बोला—प्रेमलता, तुम्हें जब देखा था तभी तुमसे बहुत कुछ आशायें की थी। जाने क्यों मुझे यह विश्वास था कि घर के भीतर बैठ खिलौनों की भांति खेली जाने के लिए तुम नहीं हो। तुम में एक शक्ति की सत्ता का मुझे विश्वास था। मैं जानता था कि वह शक्ति कभी न कभी अवश्य ही उभर उठेगी और तब तुम्हारा सारा जीवन ही बदल जायगा।

‘तो तुम मेरे गुरु बनो।’ प्रेमलता ने मुस्कराते हुए कहा।

‘गुरु नहीं, पर साथी अवश्य। बहुत दिनों से मेरा विचार था कि ‘जाग्रति-नारी-संघ’ की स्थापना की जाय पर इस कार्य का भार मैं स्वयं अपने ऊपर ले नहीं सकता था और कोई दूसरा उपयुक्त व्यक्ति मुझे मिल न रहा था। अब तुम मिल गईं तो हमें कार्य में देर न करनी चाहिए।’

उसी दिन जाग्रति-नारी-संघ की सम्पूर्ण योजना तैयार की गई। कई घण्टे के विचार-विनिमय के पश्चात् जब कांतिकुमार चला गया तब प्रेमलता ने अनुभव किया कि वह आज बहुत अधिक प्रसन्न है। जीवन में नारी का शायद एक लक्ष्य होता है। बिना लक्ष्य के वह एक क्षण भी नहीं रह सकती। यही बात प्रेमलता के साथ भी थी। पहले उसका लिए एकमात्र पति था पर निशीथ ने इस लक्ष्य को अस्त-व्यस्त कर दिया। एक आधार की प्रेमलता को आवश्यकता थी सो यह नया आधार पा वह प्रसन्न हो उठी।

और उसके बाद प्रेमलता का सारा समय संघ के कार्यों में लगने लगा। घर में रहने का उसे बहुत कम समय मिलता। निशीथ की ओर से वह निश्चिन्त हो चुकी थी—जितनी जिस वस्तु की उपयोगिता होती है उतना ही उसका महत्व भी होता है।

निशीथ यह सब देखता था तो उसे सुख मिलता था कि प्रेमलता शांति प्राप्ति के लिए एक साधन खोज सकी है।



[ ७ ]

जब से जागृत-नारी-संघ की स्थापना हुई है तब से प्रेमलता को अवकाश नहीं मिलता; वह अधिकतर संघ के कार्यों में ही व्यस्त रहती है। कांतिकुमार की कार्य-प्रणाली में प्रेमलता ने बहुत कुछ अन्तर ला दिया है। निराश हतोत्साह सा वह अब तक काम करता था पर जब से प्रेमलता इस क्षेत्र में आ गई है कांति की जैसे शक्ति सी मिल गई है। प्रेमलता को देख वह प्रेरणा का अनुभव करता है। प्रेमलता भी सदैव कांति का ध्यान रखती है; उसे उत्साहित करती रहती है। यह कांति उसके जीवन में एक-पहेली सा उलभ रहा है। विद्यार्थी जीवन में जब पहले-पहल उसका परिचय कांति से हुआ था, उस समय उसने युवक कांति की आंखों को देखा था। उसके हृदय में जो भाव प्रेमलता के प्रति थे उसे जैसे प्रेमलता ने जान लिया हो। पर आज का कांति दूसरा है; वह प्रेमलता के साथ बराबर रहता है परन्तु कभी उसके हृदय की वह कमज़ोरी फिर उसकी आंखों पर न दिखाई दी। प्रेमलता चाहती है कि वह कांति को फिर उसी भावों के साथ अपने निकट देखे पर जाने क्यों कांति उसी प्रकार रहता है निर्लेप सा। जैसे किसी नारी के प्रति उसके हृदय में कुछ मोह न रह गया हो। प्रेमलता उससे घुल-मिल कर रहना चाहती है परन्तु फिर भी उसे अपने निकट नहीं पाती।

और कांति सोचता है कि इस प्रेमलता का ससर्ग उसे एक शुभ कार्य में प्राप्त हुआ है; उसका जीवन एक महत् कार्य के लिए है। तब उसे प्रेमलता को किसी दूसरी ओर ले जाने का अधिकार ही क्या है। प्रेमलता के दाम्पत्य जीवन की उदासीनता से वह परिचित है परन्तु फिर भी वह यह नहीं चाहता कि किसी प्रकार उसमें और विष बो दे। कभी-कभी जब उसका यौवन विद्रोह करने लगता है तब एक स्त्री का अभाव उसे उभर कर सता उठता है। तब उसके अन्तर की

दशा भी बड़ी करुणाजनक होती है। परन्तु कभी उसने यौवन के इस विद्रोह को सफल नहीं होने दिया। दमन में वह विश्वास करता है। और उसने अपनी भावनाओं को सदैव ही नियन्त्रण में रखा है।

और यह है निशीथ! इधर जब से प्रेमलता उसकी ओर से लापरवाह हो गई है उसे स्वयं की चिन्ता रहने लगी है और उसे यह अनुभव हो गया है कि वह भी कुछ कर सकता है। प्रेमलता का आश्रय उसके लिए अधिक महत्व नहीं रखता। वह उसे कांति के साथ बराबर देख रहा है; उसको कांति के प्रति ईर्ष्या होती है। उस कांति को प्रेमलता का इतना सा सम्मान स्नेह पाने का आखिर अधिकार क्या है। किन्तु प्रेमलता से वह इस सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं चाहता। उस दिन निशीथ ने प्रेमलता से कांति के सम्बन्ध में पूछा तो उसने बताया था कि वह उसका पूर्व परिचित है। उसकी लिखित पुस्तकें वह पढ़ती है, सभी पुस्तकें उसकी उसने अपनी आत्मा में लगा रखी हैं। परन्तु निशीथ की पुस्तक को वह लड़कों की पुस्तक कहती है। निशीथ यह सब कुछ सुलझाने का प्रयत्न करता है पर कर नहीं पाता।

पड़ोस में प्रोफेसर सिनहा आ गए हैं। डाक्टर श्रीनेत पहले उस बंगले में रहते थे; बड़े नीरस से व्यक्ति थे। पास पड़ोस वालों से उनकी कभी घनिष्टता न हो सकी। प्रोफेसर सिनहा विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं। बड़े ही मिलनसार अधेड़ अवस्था के व्यक्ति हैं। घर में पत्नी है और दो लड़कियां—बड़ी सत्तरह-अठारह वर्ष की है। प्रोफेसर सिनहा को उसके विवाह की चिन्ता है।

निशीथ का परिचय प्रोफेसर सिनहा से पुराना है। उनकी वह श्रद्धा करता है। सो जब वे पड़ोस से आ गए तो बहुधा वह उनके यहाँ जा कर बैठता है। प्रोफेसर सिनहा को शतरंज खेलने का बहुत शौक है। अवकाश के समय में वे किसी न किसी के साथ शतरंज खेलते रहते हैं। निशीथ शतरंज नहीं खेलता पर उसे प्रोफेसर सिनहा और कभी उनकी पत्नी या पुत्री के बीच शतरंज होते देखना अच्छा लगता है।

बाजी हार रही है। प्रोफेसर सिनहा बार-बार अपना चश्मा ठीक करते हैं, केशहीन कपाल पर हाथ फेरते हैं कि कोई चाल सूझ जाय और उधर मिसेज सिनहा या मिस सिनहा बैठी मात देनेवाली चाल खोज रही हैं।

उस दिन प्रोफेसर सिनहा अपनी बड़ी पुत्री कुमारी मणि के साथ शतरंज खेल रहे थे कि निशीथ पहुंच गया। प्रोफेसर सिनहा की बाजी हार रही थी जैसे अब वे यौवन द्वारा पराजित हो रहे हों। निशीथ कुछ देर तक देखता रहा। चेस बोर्ड पर रखे यह मोहरें जैसे सजीव हो उठे हों। उसने दृष्टि उठाई तो देखा मिस मणि उसकी ओर देख रही हैं और प्रोफेसर चाल खोज रहे हैं। उसे हंसी आगई। मणि के अधरों पर भी मुस्कान की एक रेखा खिंच गई।

तभी प्रोफेसर को चाल सूझ गई। मणि के मस्तक पर पराजय की छाया घिर गई। निशीथ ने यह सब देखा तो मुस्करा कर कहा—इस संसार में प्रत्येक वस्तु का अपना एक स्थान निश्चित है, एक दैवी लक्ष्य लेकर वह संसार में अवतरित होता है और उस उद्देश्य की पूर्ति की शक्ति भी उसमें होती है। सब कुछ एक निश्चित पूर्व विधान के अनुसार चलता रहता है।

प्रोफेसर को चाल सोचना नहीं था, सो भट उन्होंने कहा—नहीं नहीं निशीथ, यह तो भाग्यवाद हुआ। संसार में भाग्यवाद कोई चीज नहीं। किसी की भी पूर्व निश्चित कोई मंजिल नहीं है। जीवन भी बस शतरंज का खेल समझो। कोई शक्ति हमें मोहरों की भांति संसार में रख देती है—वह शक्ति शायद उस खेल का अन्त अपनी इच्छानुसार कर सकती है पर नहीं वह उसे हमारे ऊपर छोड़ देती है। हम अपनी चालें चलते हैं, हार जीत, हमें ज्ञात नहीं रहती पर हमारे हाथ रहती अवश्य है।

‘और जब हम अनुभव करते हैं कि हमारी बाजी हार रही है तब हमें सहसा अपनी भूलों का अनुभव होता है।’

निशीथ ने मणि की ओर देखा; वह गंभीर हो उठी थी। जीवन की

यह दार्शनिकता जैसे उसे भी कुछ सांचने के लिये बाध्य कर रही हो । निशीथ को लगा जैसे उसके जीवन का लक्ष्य ज्ञात नहीं पर चलता वह जा रहा है और यदि मंजिल से दूर वह हो गया तो ? क्षण भर के लिए वह चिन्तित हो उठा ।

इतने गंभीर वातावरण में निशीथ वहाँ अधिक देर तक न बैठ सका । लौट कर घर आया तो महाराजिन ने आकर कहा—अभी एक आदमी आया था आपके लिए यह पत्र दे गया है ।

निशीथ ने पत्र ले लिया और अपने कमरे में चला गया । लिफाफे पर की लिखावट उसे परिचित सी जान पड़ रही थी । बड़ी देर तक उन परिचित अक्षरों को ध्यानपूर्वक देखता रहा; फिर उसने लिफाफा फाड़कर पत्र निकाल लिया । एक छोटे से कागज पर चन्द पंक्तियां लिखी थीं—

मेरे निशीथ,

मैं आजकल यहाँ आ गई हूँ । मेरे पति की नियुक्ति यहाँ ही हुई है । क्या किसी समय तुम आओगे ? कब जैसे ही हम यहाँ पहुँचे मुझे तुम्हारा ध्यान आ गया । पर स्वयं मैं तुम्हारे पास न आ सकी ।

आना अवश्य !

तुम्हारी

नयना

तो यह नयना का पत्र है । वह यहाँ आ गई है । अतीत की स्मृतियाँ आकर उसकी आँखों के सामने फिर गईं । वह उप समय एम० ए० का विद्यार्थी था । नयना यूनीवर्सिटी में नई ही आई थी । निशीथ कभी किसी भी लड़की की ओर देखता नहीं पर उस दिन जाने किस क्षण में उसका नयना से परिचय हो गया । और फिर निशीथ सा 'पजलहेड' भी उसकी ओर आकर्षित होने लगा । नयना को निशीथ के हृदय में इस स्पन्दन का ज्ञान था परन्तु वह चाहती थी निशीथ से प्रेम-याचना कराना और यह निशीथ कर नहीं सका । तभी निशीथ ने देखा उसका रामकुमार से साथ परिचय हुआ; विवाह भी दोनों का हो गया, फिर सुना रामकुमार आई० सी० एस० हो गया ।

और यह रामकुमार अब यहाँ आ गया है ! नयना को निशीथ अपने जीवन से निकाल चुका । उये स्वयं आश्चर्य होता है कि नयना के प्रति वह आकर्षित कैसे हो गया था । उसकी स्मृति धुंभली पड़ गई तब आ गई प्रेमलता—उसकी पत्नी । अपनी सुधि भी निशीथ नहीं ले पाता था पर प्रेमलता के साथ उसके जीवन में परिवर्तन होने लगा और आज वह यह अनुमान करता है कि वह पहले से बहुत बदल गया है ।

किन्तु प्रेमलता !

अधिक वह कुछ सोच नहीं पा रहा था । प्रेमलता ने अपना लक्ष्य समस्त राष्ट्र की सेवा करना बना लिया है और नयना ! शायद आज भी वह पहले सी ही होगी ।

नयना !!

सोचते हुए उसने आँखें बंद कर लीं । घड़ी की टिक-टिक में उसे सुनाई पड़ रहा था :

नयना ! नयना !!



[ ८ ]

निशीथ विचारों में उलझा हुआ बैठा रहा, पत्र उसने उसी प्रकार खुला हुआ मेज पर रख दिया । खिड़की के बाहर एक लता लग रही है । हवा में भूलती हुई लता को वह ध्यान से देख रहा था । एक आश्रय ले यह लता इस प्रकार भूल रही है । मनुष्य कितना निर्बल है; एक आश्रय ही तो वह सदैव खोज करता है । लता के लाल-सफेद फूल जैसे उसका समर्थन कर रहे हों । कितनी देर तक वह विचारों में उलझा रहा इसका ध्यान उसे स्वयं ही नहीं रहा ।

प्रेमलता दोपहर से ही बाहर गई हुई थी । इधर कई दिन से निशीथ के पास प्रेमलता अधिक देर तक बैठ न सकी थी । जब से



जाग्रत-नारी-संघ की उसने स्थापना की है तब से अपना सारा समय वह उसी में लगाती है। दिन भर वह घर-घर जाकर संघ का प्रचार करती है। निशीथ को प्रेमलता के इस कार्य से संतोष है। वह समझता है कि मनुष्य के जीवन में कोई उद्देश्य होता है और उसी के सहारे उसका जीवन रहता है। शायद जीवन और लक्ष्य अन्यान्याश्रित है। एक ही वस्तु के दो रूप हैं।

निशीथ उठकर कमरे में टहलने लगा। अवसान के सूर्य की किरणें उसके चरणों पर अपना सारा सुवर्ण बिखेर रही थीं। आकर वह खिड़की के निकट खड़ा हो गया। बाहर सड़क पर कोई गाता हुआ भा रहा था; निशीथ सोचता रहा। कितना सुखी और निश्चिन्त है यह? इधर कुछ दिनों से निशीथ जैसे वर्तमान समाज से उदासीन होता जा रहा है। वह जैसे अनुभव करता है कि समाज में उसे स्थान नहीं, प्रेमलता की उपेक्षा पर वह कभी-कभी विचार करता है। परन्तु कैसे कहे वह कि प्रेमलता उसकी उपेक्षा करती है। ऐसा उसने कभी प्रकट तो नहीं किया। हां, जाग्रत-नारी-संघ में अधिक व्यस्त रहने के कारण उसे उसकी चिन्ता करने का शायद अवकाश नहीं मिलता। पर यह तो कुछ है नहीं।

तभी ध्यान आया; यह कांति! कांतिकुमार के प्रति निशीथ अनजाने में ही एक ईर्ष्या-सी अनुभव करता है। कितनी बार उसने अपने विचारों का विश्लेषण करना चाहा पर कर न सका। कांति के प्रति उसके हृदय में क्या भाव हैं यह वह स्वयं निश्चय नहीं कर सका। आकर वह फिर कुर्सी पर बैठ गया।

दरवाजे पर का पर्दा हिला और प्रेमलता ने पति के कमरे में प्रवेश किया। निशीथ की विचार धारा टूट चुकी थी। वह प्रेमलता की ओर देख रहा था जैसे वह उससे कुछ कहना चाहता हो पर कह न पा रहा हो। आकर प्रेमलता उसके निकट बैठ गई; तो निशीथ ने पूछा—अभी आ रही हो क्या?

‘हां; अभी ही तो आ रही हूँ। तुम्हें देखा खाली बैठे हो तो चली आई।’ प्रेमलता ने उत्तर दिया।

निशीथ क्षण भर प्रेमलता के मुख की ओर देखता रहा। बहुत थकी-सी वह प्रतीत होती है; जान पड़ता है जैसे उसे बहुत परिश्रम करना पड़ा हो। निशीथ नहीं चाहता कि प्रेमलता को किसी प्रकार का कष्ट हो। उसको किसी काम से वह रोकना भी नहीं चाहता। बोला—  
तुम, जान पड़ता है, बहुत थक गई हो!

‘हां, आज दोपहर से ही मुझे अवकाश नहीं मिल सका।’

क्षण भर तक निशीथ चुप रहा फिर बोला—तुम्हें इतना परिश्रम नहीं करना चाहिए प्रेम!

उसकी वाणी में एक नमी थी। प्रेमलता को निशीथ की बात आज अच्छी लग रही थी। उसने कहा—संघ का प्रचार होना आवश्यक है। अभी हमारे नारी समुदाय में कुछ करने की रुचि नहीं है। उनमें रुचि उत्पन्न करना आवश्यक है।

निशीथ चुप रहा। फिर बोला—तुम्हारा यह संघ आखिर चाहता क्या है! जिस प्रकार के नारी-स्वातन्त्र्य को तुम अपना लक्ष्य बनाना चाहती हो वह तो तुम्हें और भी बंधनपूर्ण बना देगा।

प्रेमलता निशीथ से विवाद करना नहीं चाहती। निशीथ का विश्वास है कि स्त्री का स्थान घर में है। वह नारी की पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक है किन्तु वह ऐसी स्वतंत्रता को पसन्द नहीं करता कि स्त्री घर छोड़ कर बाहर के क्षेत्र को अपनाये। बहुधा प्रेमलता से उसका विवाद हुआ है। निशीथ के तर्कों का उत्तर वह नहीं दे पाती पर उसकी बात को स्वीकार भी वह नहीं कर पाती।

प्रेमलता कुछ न बोली, तो निशीथ ने पूछा—तुम्हारे संघ का क्या समाचार है?

‘अच्छा ही है; पर सार्वजनिक कार्य करने के लिए स्त्रियों का बहुत अभाव है। प्रायः सभी स्त्रियां अपने घर के कामों से ही अवकाश नहीं

पार्टी। जो थोड़ी सी हैं भी वे इतने बड़े कार्य को कर ही कैसे सकती हैं।' प्रेम लता ने कहा।

निशीथ ने कोई उत्तर न दिया; तो प्रेमलता ने महाराजिन को पुकारा। द्वार पर आकर महाराजिन खड़ी हो गई। प्रेमलता ने चाय लाने को कह दिया और स्वयं कपड़े बदलने के लिए अन्दर चली गई। निशीथ प्रेमलता को जाते हुए देखता रहा।

चाय बनाकर तैयार हो गई तो महाराजिन ने आकर प्रेमलता से पूछा—बहू जी आप चाय कहाँ पियेंगी।

‘बाबू जी चाय पी चुके?’ प्रेमलता ने प्रश्न किया।

‘नहीं उन्होंने तो कई दिन से चाय पीना बंद कर दिया।’ महाराजिन ने उत्तर दिया।

प्रेमलता को आश्चर्य हुआ। कई दिन से चाय नहीं पीते। आखिर क्यों! बोली—बाहर के कमरे में पियूंगी।

महारिन ने चाय की ‘ट्रै’ लाकर मेज पर रख दी तो आश्चर्य के साथ चौंकर निशीथ ने कहा—मैंने तो कहा कि मैं अब चाय नहीं पिया करूंगा।

‘बहू जी, के लिए है।’ महारिन ने उत्तर दिया और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वह कमरे से बाहर चली गई।

तभी प्रेमलता आकर मेज के निकट एक कुर्सी खिसका बैठ गई। निशीथ उसी प्रकार बैठा रहा, तो प्रेमलता ने कहा—इतनी दूर क्यों बैठे हैं मेज के निकट आइए न!

निशीथ ने चाहा कि वह कह दे कि उसने चाय पीना बंद कर दिया पर कह वह नहीं सका। कुर्सी उसने निकट खिसका ली।

चाय पीते-पीते सहसा प्रेमलता की दृष्टि मेज पर पड़े हुए पत्र पर पड़ी तो आँखें जैसे उलझ गई हों। ‘मेरे निशीथ’—‘नयना’ बड़े-बड़े अक्षरों में यह शब्द उसकी आँखों के सामने जैसे नाच उठे। तभी निशीथ ने कहा—नयना का पत्र है।

‘कौन नयना ।’ प्रेमलता ने प्रश्न किया ।

‘बहुत दिन हुए जब मैं पढ़ता था तब वहीं मेरा इनसे परिचय हुआ था । उसके पति आई० सी० एस० हैं । यहां उनकी नियुक्ति हुई है ।’

क्षण भर प्रेमलता चुप रही । इस स्त्री का उसके पति से साधारण परिचय होगा यह उसे जैसे विश्वास नहीं हो रहा था । सो उसने पूछ लिया—पर ‘मेरे निशीथ !’ तो.....

‘ओह, तुम नहीं जानती यह नयना भी बड़ी विचित्र स्त्री है । एक समय जब मेरा इससे परिचय हुआ था तब मैं इससे विवाह कर सकता था, उसका हो सकता था । पर शायद वह उस संबोधन को अभी तक भूल नहीं सकी ।’ निशीथ ने उत्तर दिया ।

प्रेमलता ने पति की ओर देखा । निशीथ की सरल निष्कपट आँखें देख उसे उसकी बातों पर विश्वास करना ही पड़ा ।

उसने कहा—पर अब यह क्यों बुला रही है तुम्हें !

पत्र उसने उठा कर पढ़ना शुरू कर दिया था ।

निशीथ ने उत्तर दिया—यही तो मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा हूँ, अतः इतनी पुरानी हो गई कि शायद नयना का चित्र भी मेरे मस्तिष्क में बहीं रह गया । यह भी नहीं कह सकता कि अब उसे सहसा देख कर पहचान भी सकूंगा या नहीं ।

‘तुम न समझो पर मैं समझती हूँ ।’ प्रेमलता ने उत्तर दिया ।

निशीथ उसकी ओर आश्चर्य के साथ देखता रहा । पत्र प्रेमलता ने स्निग्धफे के अन्दर रख दिया, चाय समाप्त हो गई थी; महारिज ‘ट्रे’ उठा खे गई ।

प्रेमलता ने कहा—तो तुम नयना से भेंट करने जाओगे ।

निशीथ जैसे चौंक उठा । ऐसा तो कुछ अभी वह निश्चय नहीं कर सका, कैसे कहे कि वह नयना से मिलने जायगा या नहीं ।

‘कह नहीं सकता ।’ निशीथ ने उत्तर दिया ।

‘पर जब बुलाया है तो तुम्हें जाना ही चाहिए ।’

प्रेमलता की बात उसे कुछ अजीब-सी लगी मुस्करा कर उसने कहा—क्यों ? जाना मेरे लिए आवश्यक—क्यों है ?

‘आवश्यक नहीं है, पर जब कोई बुला रहा है।’.....

प्रेमलता चुप हो गई। निशीथ उसकी ओर देखता रहा। वह चाहता था कि बातचीत का विषय बदल जाय।

‘चलो पार्क में बैठें’ कह कर निशीथ उठ खड़ा हुआ। निशीथ अपना कमरा छोड़ कर बाहर बहुत कम बैठता है वह भी विशेष कहने पर। निशीथ का प्रस्ताव सुन प्रेमलता का आश्चर्य हुआ। इधर वह निशीथ में एक परिवर्तन का अनुभव कर रही है।

पार्क में आकर वे बैठ गए। निशीथ फूलों के सांध्य-सौंदर्य को निहार रहा था। प्रेमलता ने दो फूल तोड़ लिए और लाकर निशीथ के कोट के बटन-होल में लगा दिया। निशीथ एक बार खिलखिला कर हँस पड़ा। उसे जान पड़ रहा था जैसे वह कुछ दूसरा-सा अनुभव कर रहा हो और प्रेमलता..... स्त्री है।

## [ ९ ]

निशीथ की विचार धारा भंग हो गई।

‘ओह, मिस्टर निशीथ हैं; नमस्ते ! संयोग से ही हमारी भेंट हो गई।’

निशीथ सहसा चौंक पड़ा। हाथ में लिए एक पुस्तक देख रहा था। उसे उसी प्रकार रख दी। मुड़कर देखा, नयना खड़ी थी। साथ में उसके एक नवयुवक था, अंगरेजी वेशभूषा में, मुंह में सिगरेट लगी हुई थी।

निशीथ ने नमस्ते किया—कहने जा रहा था कि कल तुम्हारा पत्र मिला था; मैं किसी समय तुम्हारे यहां आने के लिए सोच रहा था; पर नयना के साथ खड़े युवक को देखकर वह रुक गया।

पुस्तकों की यह प्रसिद्ध दुकान है। निशीथ की पुस्तक यहीं से प्रकाशित हुई है। आज वह कुछ नई पुस्तक मोल लेने के लिए चला आया था।

अपने पति का परिचय देते हुए नयना ने कहा—मिस्टर निशीथ यह हैं मेरे पति !

निशीथ ने युवक को हाथ जोड़ कर नमस्कार किया तो युवक ने अभिवादन का उत्तर देते हुए कहा—आप से परिचय प्राप्त कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। नयना के मुख से आपकी प्रशंसा सुनने का बहुधा अवसर प्राप्त हुआ है।

निशीथ कोई उत्तर न दे सका; उसने नयना की ओर देखा; फिर कहा—मुझे भी आप से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। नयना का परिचय मेरा बहुत पुराना है। हम लोग तब विद्यार्थी थे।

नयना हंस पड़ी—हां; तब हम विद्यार्थी थे और आज यह प्रोफेसर हैं। निशीथ हंसने लगा।

नयना के पति ने पूछा—आप कुछ किताबें ले रहे हैं क्या ?

‘हाँ !’ निशीथ ने उत्तर दिया।

दुकानदार ने कुर्सियां बढ़ा दी; तो वे बैठ गए। नयना को कुछ पुस्तकें लेनी थीं। वह उपन्यास तथा कहानियां अधिक पढ़ती है। सामने रखी पुस्तकें देखने लगी तो निशीथ नयना के पति के साथ बातें करता रहा।

बातों के सिलसिले में नयना के पति ने कहा—यह शहर है बहुत अच्छा मुझे बहुत पसन्द आया। जब से मैं सर्विस में आया प्रायः बड़े-बड़े नगरों में ही रहना पड़ा है, जहां सब प्रकार की सुविधा रही है; परन्तु यहां से अधिक आराम का स्थान मुझे कहीं नहीं मिला।

निशीथ ने कहा—हाँ,—

रामकुमार ने कहा—इतना बड़ा शहर है पर जहां हम रहते हैं उस स्थान का वातावरण इतना शान्त है कि यह अनुमान ही नहीं

होता कि हम किसी बड़े नगर के जन-पूर्ण कोलाहल-मय वातावरण में रह रहे हैं।

‘जी हां, यहाँ की यही विशेषता है !

नयना ने पुस्तकें ले ली थीं। उसने दूकानदार से पुस्तकों का बंडल बंधवा देने और उनका दाम बताने को कह दिया।

निशीथ ने उसकी ओर देखकर पूछा—किताबें ले चुकीं।

‘हाँ।’ नयना ने मुस्कराते हुए कहा।

तभी नयना को जैसे कुछ ध्यान आ गया; उसने कहा—आपने भी तो पुस्तकें लिखी हैं। एक पुस्तक आपकी मैंने पढ़ी है। बहुत सुन्दर है।

‘एक ही पुस्तक अब तक मेरी प्रकाशित हुई है और वह भी ऐसी ही साधारण सी है। स्कूल के विद्यार्थियों के लिए।’

‘वह ! अरे स्कूल के विद्यार्थियों के लिए, क्यों ? वह तो बड़ी ही सुन्दर पुस्तक है। जब मैं पिछले दिनों देहली में थी तो मैंने उसे अपनी एक सखी के पास से लेकर पढ़ी थी। वे स्कूल में अध्यापिका हैं।’

निशीथ को अपने पुस्तक की प्रशंसा सुनकर सुख मिल रहा था। उसकी पुस्तक की प्रशंसा सभी ने की है। परन्तु नयना के मुख से प्रशंसा के शब्द सुनकर उसे आज जाने क्यों बहुत प्रसन्नता हो रही थी। प्रेमलता भी तो है; उसने निशीथ की पुस्तक की प्रशंसा कभी नहीं की, सदैव ही वह उसकी पुस्तक को स्कूल के बच्चों की पुस्तक कहती है।

निशीथ ने कहा—मेरी पुस्तक की प्रशंसा करती हो पर उसमें रखा क्या है।

नयना मुस्करा उठी; निशीथ को लगा जैसे नयना कह रही हो यदि तुम्हारी पुस्तक में कुछ नहीं है तो तुममें क्या रखा है।

तभी नयना के पति ने कहा—नहीं मिस्टर निशीथ यह आपका नम्र स्वभाव है। मैंने भी आपकी पुस्तक पढ़ी थी। इसमें कोई संदेह नहीं आप उसके लिए बधाई के पात्र हैं।

निशीथ ने कोई उत्तर न दिया। आज पहली ही बार शायद उसने यह अनुभव किया है कि उसकी पुस्तक सचमुच महत्वपूर्ण है।

दूकानदार ने पुस्तकों का बंडल लाकर रख दिया तो निशीथ ने कहा—एक प्रति मेरी पुस्तक की भी लाना।

दूकानदार ने तुरन्त ही एक प्रति उसके हाथ में लाकर दे दी तो निशीथ ने उस पर भेंट लिखकर नयना को दे दिया।

वे दूकान से बाहर निकल रहे थे तो निशीथ सोच रहा था—यह नयना है। कितने दिनों बाद वह उसे आज मिली है। कितना परिवर्तन अब उसमें हो गया है। पहले का सा वह चांचल्य, वह शोखी, कुछ भी तो नहीं रह गई। कोई एक बार देखकर यह नहीं कह सकता कि नयना अद्वितीय सुन्दरी है। ऐसा कुछ बाह्य सौंदर्य उसमें कभी नहीं रहा पर जाने क्यों उसमें एक अजीब सा आकर्षण है जिससे वह सब को जैसे अपने निकट खींच लेना चाहती हो।

निशीथ उसकी ओर ध्यान से देख रहा था, साड़ी का पल्ला सिर से गिर पड़ा तो नयना ने उसे फिर से उठा कर सिर पर डाल लिया। साड़ी कम्पन से मर-मर ध्वनि हुई; एक मधुर सुरभि से पवन भर गया। निशीथ के नासापुटों में यह सुगंधि भर कर उसके हृदय में एक विचित्र प्रकार का आन्दोलन उत्पन्न कर रही थी।

बाहर नयना की मोटर खड़ी थी। सोफर ने दूर से आते देखा तो उतर कर मोटर का द्वार खोल दिया। नयना अपने पति के साथ बैठ गई पर निशीथ उसी प्रकार खड़ा रहा। नयना ने कहा—आइए न, अब हम घर ही चल रहे हैं।

‘नहीं, फिर किसी समय आऊंगा।’ निशीथ ने कहा पर उसका ध्यान दूसरी ओर था।

नयना ने आग्रह किया। बहुत दिन पश्चात वे मिले हैं। निशीथ को उसका आग्रह स्वीकार करना ही पड़ा। वह मोटर पर बैठ गया। रास्ते भर निशीथ के विचारों की धारा प्रबल रूप से बह रही



थी। बीच-बीच में सड़क पर चलने वालों की भीड़ बढ़ जाती और मोटर धीमी पड़ जाती तो जैसे वह जग उठता।

बंगले पर पहुँच कर नयना के पति शोफर को कुछ आदेश देने लगे तो नयना ने निशीथ को साथ लिए हाल में प्रवेश किया। निशीथ ने बैठते हुए कहा—नयना, तुम्हारे पति बहुत ही भले व्यक्ति प्रतीत होते हैं। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ।

नयना हँस पड़ी। कोई इतनी देर में ही किसी के स्वभाव का अनुमान कैसे लगा सकता है। बोली—इनके चरित्र की यही तो विशेषता है; कोई इन्हें पहचान नहीं सकता।

‘पर शायद मैं किसी को पहचानने में भूल नहीं कर सकता।’ निशीथ ने हँस कर उत्तर।

नयना गम्भीर हो बोली—निशीथ, तुम बड़े ही भोले हो और इसी लिए तुम्हें संसार के मनुष्य का केवल एक ही पहलू दिखाई पड़ता है।

निशीथ को लगा जैसे उसने कहीं भारी भूल की हो। बोला—पर मैं अब पहले सा भोला नहीं रह गया नयना। मुझे अपना भोला-पन अब पसन्द नहीं।

‘पर मैं तो तुम्हारे भोलेपन को ही पसन्द करती हूँ।’ नयना ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया।

क्षण भर शान्ति रही पर निशीथ को लगा जैसे शांति का यह क्षण पूरा एक युग रहा हो।

नयना ने ही फिर शांति भङ्ग की पर इस बार उसकी आवाज अधिक गम्भीर और स्वर उच्च था जैसे उसे भी लगा हो कि वे बहुत देर तक चुप रहे, जैसे उसने बोलने का बरवश प्रयत्न किया हो।

‘और तुम्हारी पत्नी कैसी है?’

‘ओह ! प्रेमलता ! बड़े मजे में है। आज कल उसे संघ से ही अवकाश नहीं मिलता।’

‘संघ ? संघ कैसा?’

‘जाग्रति-नारी-संघ । उसने एक संघ स्थापित किया है जिसका उद्देश्य प्रत्येक स्त्री को पुरुष की भांति स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनाना है ।’

नयना हंस पड़ी—‘स्त्री को स्वतन्त्र बनाना ! यह भी कैसा विचार है । आखिर स्वतन्त्र होकर स्त्री करेगी क्या ?

निशीथ ने अनुभव किया उसके और नयना के विचारों में एक साम्य है । ठीक ही तो है—नारी स्वतन्त्र होकर करेगी ही क्या ? उसका क्षेत्र जो इतना विस्तृत नहीं है ।

उसने कहा—मेरी भी सदैव यही धारणा रही है कि स्त्री के लिये इतनी स्वतन्त्रता का कोई उपयोग नहीं है । परन्तु प्रेमलता का इस विषय में सुझाव से मतभेद है । उसका कहना है कि स्त्री की स्वतन्त्रता आवश्यक है । उस का विश्वास है कि जब तक स्त्री स्वतन्त्र नहीं होगी । देश की उन्नति कदापि नहीं हो सकती ।

नयना कुछ कहने ही जा रही थी कि उसके पति ने हाल में प्रवेश किया । आकर वे बैठ गए ।

और जब काफी देर हो गई तो निशीथ को ध्यान आया । उसे घर भी तो चलना चाहिए । नयना तथा उसके पति से बिदा लेते हुए उसने कहा—तो मैं आशा करूँ कि आप लोग किसी समय मेरे यहाँ आने की कृपा करेंगे ।

नयना हंस पड़ी—किसी समय ? जब कहे तब ही हम आ सकते हैं । जब तुम घर पर रहो ।

‘तो कल शाम को ।’

‘अच्छी बात है ।’

निशीथ ने नयना की ओर देखा; उसकी आँखें जैसे उसके हृदय में उलझ रहना चाह रही हों ।

उनके बंगले से बाहर निकल वह सड़क पर आ गया । वह चौराहा दाँखता है, वहाँ तांगे खड़े रहते हैं । निशीथ वहीं तांगा कर लेगा ।

पर नयना के वे नयन उसके हृदय में चुभ से रहे थे। उसे सहसा किसी कविता की पंक्ति याद आ गई—

इन नयन-सिन्धु के तट पर,  
कितने जहाज टकराये।

वह नयना के सम्बन्ध में सोच रहा था। 'नयना-प्रेमलता-प्रेमलता-नयना' यह दो नाम बार-बार उसके मस्तिष्क में उभर रहे थे। पर सोच वह क्या रहा था वह स्वयं ही नहीं समझ पा रहा था। कई बार उसने अपने विचारों का विश्लेषण करना चाहा। आखिर वह यह सब क्यों सोच रहा है। परन्तु कुछ भी उसको समझ में न आ रहा था।

घर पहुँच वह सीधे अपने कमरे में जा कर एक आराम कुर्सी पर डुलक रहा; जैसे मस्तिष्क के भार से उसके पैर लड़खड़ा गए हों।

उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे नयना की उन आंखों में सारा संसार बसा हो, जैसे उसके बाहर निशीथ कुछ देखना ही न चाहता हो। नयना भी तो एक नारी है परन्तु कितनी समझदार—प्रेमलता उसकी पुस्तक को स्कूल के बच्चों की पुस्तक कहती है परन्तु नयना उसकी कितनी प्रशंसा कर रही थी। वह चाहता था कि वह नयना को दिखला सकता कि उसे उस पुस्तक के लिए कितना प्रयत्न करना पड़ा है। पर नहीं वह समझती है। प्रेमलता उसके परिश्रम को नहीं समझ सकी। उसे कांतिकुमार की कहानियाँ पसन्द हैं। उसे जागृति-नारी-संघ के लिए रात-दिन दौड़ना पसन्द है। पर नयना कहती है स्त्री के लिए स्वतंत्रता का उपयोग ही क्या। यही तो वह भी समझता है।

एक प्रकृति।.....

निशीथ सोच रहा था। इतने दिन हमारे विवाह के हुए पर हम एक दूसरे से अपरिचित ही रहे जैसे हमने अपने ऊपर एक अंगुंठन डाल लिया हो। बिल्कुल एक पर्दा। और इतने दिन से हम इसी प्रकार रहते हैं..... और संसार में इस तरह के एक नहीं हजारों व्यक्ति हैं..... हजारों..... पर्दों के दोनों ओर वे अपने जीवन के खेल

खेलते हैं..... यह सब कितना विचित्र है..... कितना आश्चर्यजनक !  
 किस प्रकार हम एक दूसरे से दूर रहते हैं ?..... हाँ, हम दूर ही रहना  
 चाहते हैं ।..... हमारे में कुछ भी तो एक सा नहीं है ।..... पर  
 कहते हैं किसी भी दो जीव में साम्य नहीं हो सकता ।..... एक  
 कीड़े को देखो, चींटी को देखो..... क्या कभी दो में साम्य प्राप्त हो  
 सकता है ।..... नहीं होता । एक दूसरे से वे अपरिचित से रहते हैं ।  
 पर..... हम तो एक दूसरे से अपने को परिचित कहते हैं । फिर  
 क्यों नहीं हममें साम्य हो ?..... हम एक साथ जीवन व्यतीत करते  
 हैं..... हाँ, एक साथ..... दिन-रात, सप्ताह, महीने, वर्ष !.....  
 फिर भी हम एक दूसरे से अपरिचित रहें ! नहीं हमें एक दूसरे को जानना  
 चाहिए ।..... पर प्रेमलता और मैं !..... आज भी हम एक दूसरे  
 के सम्मुख बैठते हैं और हमारे बीच में होता है एक परदा..... एक  
 दूसरे को हम नहीं देख पाते !

और एक दूसरे से अपरिचित हम किसी एक लक्ष्य की ओर बढ़ते  
 हैं वैसे ही जैसे चींटियाँ एक दूसरे से अपरिचित रह एक लक्ष्य की ओर  
 बढ़ती हैं । उनका लक्ष्य ही उनके बीच का परिचय है । एक दूसरे का  
 परिचय उन्हें नहीं ।..... तो मैं और प्रेमलता भी एक लक्ष्य की  
 ओर निरन्तर अग्रसर होने के लिए परिचित कराये गए हैं । विवाह है  
 क्या ? प्रकृति हमें किसी लक्ष्य की ओर अपनी संयुक्त शक्ति द्वारा बढ़ने के  
 लिए एक दूसरे से परिचित कराती है और इसी को हम विवाह कहते हैं ।

किन्तु वह उद्देश्य है क्या ? प्रेम ! नहीं । कितने ही तो परस्पर प्रेम  
 करते हैं । फिर क्या सुख की प्राप्ति ! नहीं..... सुख भी तो कितनों को  
 प्राप्त है । इस परिचय का लक्ष्य प्रेम कहीं, सुख नहीं कुछ और ही है ।

उसकी विचारधारा और अधिक गहन हो गई । तो क्या प्रकृति  
 चाहती है कि मनुष्य अपने इस परिचय का एक मात्र उद्देश्य वंश-  
 वृद्धि रखे ! पर यह तो नहीं हो सकता ! इसके विरुद्ध भी तो मनुष्य  
 जा सकता है ।

उसके विचार फिर सुख के सिद्धान्त पर आकर टिक गए ! हाँ, यह सुख भी कुछ अजीब सी चीज है। अपने लिए हम सुख प्राप्त करना नहीं चाहते पर हमारा उद्देश्य दूसरों को सुखी बनाना होता है।

उसे प्रेमलता का ध्यान आ गया। प्रेमलता को अपने उद्देश्य की पूर्ति से ही सुख प्राप्त हो सकता है। वह समस्त स्त्री जाति को स्वतंत्र तथा अपने पैरों पर खड़ी देखना चाहती है।

किन्तु क्या वह प्रेमलता को सुख पहुँचा सका है, नहीं। तो वह उसको उत्साहित करेगा; उसके लक्ष्य को उसके निकट लाने का प्रयत्न करेगा।

प्रेमलता बाहर से आई, भीतर जाने के लिए उसने हाल पार किया किन्तु फिर लौट कर निशीथ के कमरे के द्वार पर आ ठहर गई।

निशीथ की विचारधारा टूट गई। बोला—कहो प्रेम, आ गई।

‘हाँ, तुमने आज कुछ पुस्तकें लाने को कहा था।’

निशीथ को स्मरण आया कि उसने कल प्रेमलता से कहा था कि वह आज अपने प्रकाशक के यहाँ जायगा। प्रेमलता के लिए उसने कुछ पुस्तक के लाने को कहा था।

उसने उत्तर दिया—हां गया तो था पर पुस्तक न ला सका।

प्रेमलता जैसे पुस्तकों के लिए अधिक उत्सुक नहीं थी, बोली—कल तुम अपनी पुस्तक की चालीस-पचास कापी मांग देना।

निशीथ को आश्चर्य हुआ, पूछा—क्या करोगी।

प्रेमलता क्षण भर चुप रही, फिर बोली—अपने संघ की सदस्याओं को दूंगी।

प्रेमलता कहकर अन्दर चली गई। उत्तर की भी प्रतीक्षा उसने नहीं की। निशीथ को आश्चर्य हो रहा था, ऐसा प्रेमलता क्यों कर रही है। सम्भव है वह स्वयं उसकी पुस्तक को महत्वहीन समझती हो पर दूसरों के सम्मुख उसे निशीथ द्वारा लिखी पुस्तक पर गर्व है। तभी तो वह संघ की सदस्याओं को वह पुस्तक भेंट करना चाहती है। नहीं

कोई और पुस्तक भी तो वह भेंट कर सकती थी। निशीथ को लगा जैसे उसने प्रेमलता को समझने में अब तक भूल की हो।

उठकर वह अन्दर गया। प्रेमलता अपने कमरे में थी। निशीथ उसके कमरे में चला। जब से निशीथ ने बाहर वाले कमरे में रहना प्रारम्भ किया है भीतर वह बहुत कम आता है। निशीथ को अपने कमरे में देख उसे आश्चर्य हुआ। उसने आश्चर्य के साथ कहा—कहो, भूल पड़े क्या ?

और वह हंस पड़ी।

निशीथ उसकी ओर देखता रहा, फिर कहा—मैं समझता हूँ कि हम लोग अत्यधिक व्यस्त रहने लगे हैं। अवकाश हमें बहुत कम मिलता है।

‘अवकाश का जीवन भी कोई जीवन है।’ मुस्कराते हुए उसने उत्तर दिया।

निशीथ ने गम्भीर हो कर कहा—हां, पर हमें कभी-कभी अवकाश की आवश्यकता होती ही है। और अब मैं महसूस करता हूँ कि हमें अवकाश की आवश्यकता है।

प्रेमलता उसी प्रकार हंसते हुए बोली—पर मैं समझती हूँ हमें ओर अधिक काम की आवश्यकता है।

निशीथ चुप हो गया। क्या कहना चाहिए यह वह समझ न पा रहा था। तभी प्रेमलता ने मधुर मुस्कान बिखेरते हुए पूछा—तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?

‘मैं सोचता था हम कुछ दिन का अवकाश ले कहीं घूम आयें।’ निशीथ ने कहा।

‘कहाँ ?’

‘कहीं भी, जहाँ तुम कहो ? एक आध महीने के लिये।’

‘किन्तु इसके लिये हमारे पास समय कहाँ है ?’

‘क्यों समय क्यों नहीं है ? मैं कालेज से छुट्टी ले सकता हूँ।’

‘किन्तु मेरे चले जाने से संघ का सारा काम जो बिगड़ जायगा ।’

निशीथ चुप हो गया । प्रेमलता संघ के काम को इतना महत्वपूर्ण समझती है । वह खिड़की के बाहर देखने लगा ।

क्षण भर बाद प्रेमलता ने फिर कहा--तुम क्या सोचने लगे ?

‘कुछ नहीं ? मैं देखता हूँ कि इधर तुम बहुत परिश्रम कर रही हो । इसका प्रभाव तुम्हारे स्वास्थ्य पर बुरा पड़ रहा है । तुम्हें संघ के काम से मैं रोक नहीं सकता इसलिए सोचा था कि यदि हम दस-पाँच दिन के लिए घूम आते तो—’

प्रेमलता को निशीथ की बात सुखप्रद जान पड़ी । प्रेमलता ने सोचा था कि शायद निशीथ को उसके सुख-दुःख की कोई चिन्ता नहीं रहती किन्तु उसे लगा जैसे वह भारी भूलकर रही हो ।

‘मुस्कराकर उसने कहा तुम व्यर्थ ही इतनी चिन्ता करते हो । अभी तो मैं और काम कर सकती हूँ ।’

निशीथ कुछ नहीं बोला । पत्नी के निकट आकर वह खड़ा हो गया । प्रेमलता उसी प्रकार चारपाई पर बैठी रही । निशीथ ने प्रेमलता के कंधे पर अपना हाथ रख दिया तो प्रेमलता के अन्तर का प्रेम उभरकर उसकी आँखों में उतर आया, उसने दृष्टि उठाकर निशीथ की ओर देखा । निशीथ खड़ा रहा उसी प्रकार निश्चल !

जीवन में पहली बार शायद प्रेमलता को पति का इतना स्नेह मिल रहा था । वह उसी प्रकार निशीथ की आँखों का मधु पीती विस्मृत सी हो उठी ।

उसका ध्यान भंग हुआ । जब निशीथ ने कहा--प्रेम, क्या तुम अपना कुछ समय मुझे नहीं दे सकती ?

प्रेमलता का हृदय भीतर ही भीतर कचोट उठा । अपना सारा समय उसने निशीथ को दिया था परन्तु उस समय निशीथ ने यह अनुभव नहीं किया । निशीथ के स्नेह के लिये वह संघ ही नहीं समस्त संसार को छोड़ सकती है ।

प्रेमलता ने कोई उत्तर नहीं दिया केवल पति की ओर एक बार देखकर उसके कोट में अपना मुँह छिपा लिया ।

...

...

...

निशीथ ने कहा—प्रेम कल नयना अपने पति के साथ हमारे यहाँ आयेगी ।

‘क्यों, तुम गए थे क्या ?’

‘नहीं मैं नहीं गया । पर, किताब की दूकान पर गया था । वहीं वह भी अपने पति के साथ आ गई ।’

‘ओह !’

‘वहाँ से वह मुझे अपने यहाँ ले गई । कल आने को कहा है ।’

प्रेमलता ने कोई उत्तर न दिया पर निशीथ ने देखा प्रेमलता के चेहरे पर प्रसन्नता झलक रही है ।

और उस दिन प्रेमलता अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक प्रसन्न दिखाई पड़ी । रात को भोजन भी उसने पति के साथ किया । रात में वे बड़ी देर तक बैठ कर बातें करते रहे और जब प्रेमलता निशीथ के कमरे से जाने लगी तो उसने मेज पर रखे गुलदस्ते से लाल गुलाब का एक फूल निकाल लिया । उसकी पंखुड़ियों पर पल भर अपनी उँगलियों फेरती रही फिर उसे निशीथ की गोद में डाल दिया और मुस्कराती हुई कमरे का दरवाजा बन्द कर भीतर चली गई ।

## [ १० ]

प्रातः से ही प्रेमलता बहुत प्रसन्न थी । निशीथ ने कालेज से छुट्टी ले ली । दिन भर प्रेमलता प्रायः पति के साथ ही रही । उसके सारे काम उसने स्वयं ही किये । नयना अपने पति के साथ संध्या की वेला में आई । वे सब हाल में आकर बैठ गए, तभी नैकर ने आकर प्रेमलता से कहा—कांति बाबू आये हैं ।



प्रेमलता को आश्चर्य हुआ उससे तुरन्त ही नौकर से बुला लाने के लिए कहा। नौकर चला गया तो प्रेमलता को आश्चर्य हो रहा था कि कांति को ऐसी क्या आवश्यकता यहाँ आने की पड़ गई। आज दिन भर वह संघ नहीं जा सकी। शायद कोई आवश्यक कार्य आ पड़ा।

नौकर के साथ कांति ने कमरे में प्रवेश किया। सफेद खदर का कुर्ता, खदर की धोती, हाथ में एक भोला और पैरों में चप्पल थी। आँखों में अनुभव का गम्भीर्य और मुखमण्डल पर थकान के चिन्ह प्रगट हो रहे थे। सब को नमस्कार कर वह खड़ा हो गया, तो प्रेमलता ने कुर्सी को ओर इंगितकर कहा—बैठिये मिस्टर कांतिकुमार; पर हाँ, आपका परिचय तो करा दूँ।

कांति चुप रहा; मिस्टर रामकुमार ने दृष्टि उठाकर आगन्तुक की ओर देखा; उसकी आँखों में आश्चर्य था, जैसे किसी भूली सुधि को वे समेटने का प्रयत्न कर रहे हों। प्रेमलता के कुछ कहने के पूर्व ही रामकुमार ने निशीथ से पूछा—आप—आपको जैसे मैंने पहले भी कहीं देखा है।

निशीथ के अधरों पर मुस्कान की रेखा खिंच गई, उसने कहा—‘मिरा सौभाग्य है कि आप मुझे पहचानते हैं। पिछले आंदोलन के सम्बंध में मुझे आपने मेरठ में ६ महीने की सज़ा दी थी।’

रामकुमार का स्मृति-पट साफ हो गया; उन्होंने कांति को पहचान लिया, बोले—आपका नाम कांतिकुमार है।

‘जी हाँ!’ कांति ने उत्तर दिया और कुर्सी पर बैठ गया।

रामकुमार के चेहरे का रङ्ग परिवर्तित हो गया, उन्होंने निशीथ की ओर देखते हुये कहा—मैंने इन्हें देखते, ही पहचान लिया था पर कह नहीं सकता था कि कहाँ देखा है।

किन्तु कांति को स्पष्ट लग रहा था जैसे रामकुमार कह रहा हो कि इस प्रकार के छोटे लोगों के बीच बैठना वह अपना अपमान समझता है। उसने प्रेमलता की ओर देखते हुये पूछा—आज आप

संघ में नहीं आईं तो मैंने सोचा आप बीमार तो नहीं पड़ गईं कहीं.....

प्रेमलता ने संकोच के साथ उत्तर दिया—हाँ, आज नहीं आ सकी कई बार आने की इच्छा हुई पर कुछ काम में ऐसी व्यस्त थी कि अवसर ही न मिला ।

‘ललिता जी आई थीं वे भी आपको पूछ रही थीं ।’

‘अच्छा ललिता बहिन बाहर से आ गईं क्या ?’

‘हाँ, आज ही आई हैं ।’

रामकुमार निशीथ से बातें कर रहा था । कांति को सहसा जैसे कुछ ध्यान आ गया तत्काल ही उसने कहा—अच्छा अब मुझे आशा दीजिये, चलूँगा ।

‘चाय तो पीलें ।’ प्रेमलता ने कहा ।

परन्तु कांति उठकर खड़ा हो गया ।

प्रेमलता ने अधिक आग्रह नहीं किया । कांति के साथ वह बाहर तक आई । कांति गम्भीर बना रहा । प्रेमलता को उसकी यह शांति कुछ अजीब सी लगी तो उसने पूछा—आप कुछ बुरा मान गये क्या ?

कांति ‘हो-हो’ करके हँस पड़ा इस प्रकार खुल कर वह बहुत कम हँसता है परन्तु उसके इस मुक्त-हास के अन्दर से उसका विषाद झलक रहा था । बोला—नहीं तो ।

जब वह चला गया तो प्रेमलता हाल में लौट आई । निशीथ ने पूछा—कांति वाबू चले गये क्या ?

‘हां, उन्हें एक आवश्यक कार्य से जाना था ।’ प्रेमलता ने पति के प्रश्न का उत्तर कुछ खिन्न भाव से दिया ।

निशीथ चुप हो गया, पर रामकुमार अब तक जैसे कुछ सोच रहा था । सहसा बोल पड़ा—श्रीमती प्रेमलता जी, आप इस व्यक्ति से कैसे परिचित हैं ।

प्रेमलता ने सहज भाव से उत्तर दिया—जब मैं पढ़ती थी तभी यह मेरे साथ थे फिर आजादी के आन्दोलन में पड़कर इन्हें सजा हो गई। जेल प्रवास से लौट कर यह फिर यहीं रहने लगे हैं।

‘करते क्या हैं?’ रामकुमार ने तनिक मुंह बनाकर पूछा।

रामकुमार का भाव क्रांति के प्रति क्या है यह प्रेमलता से छिपा न रह सका किन्तु उसने उत्तर दिया—अपना जीवन ही जिसने समाज अथवा राष्ट्र के लिये दे दिया हो वह और करेगा ही क्या.....

रामकुमार ने निशीथ के ओर मुंह करके कहना शुरू किया—मैं नहीं समझता कि यह लोग आखिर सोचते क्या हैं? देश की आजादी इस तरह जेल जाने से मिल नहीं सकती; हाँ देश के युवकों का समय अवश्य खराब होता है।

प्रेमलता कुछ कहने जा रही थी कि निशीथ ने कश—मेरा विचार है कि आजादी कोई वस्तु नहीं। मनुष्य को बन्धन में रहना ही पड़ता है। स्त्रियों को ही लीजिये। आजकल वे आजादी पाने के लिये बेचैन हो उठी हैं परन्तु उनकी आजादी कैसी है यह शायद वे नहीं जानती।

प्रेमलता ने समझ लिया कि बात उसी पर कही गई है, परन्तु वह विवाद से दूर ही रहना चाहती थी। रामकुमार ने कहा—जहां तक स्त्रियों की आजादी का प्रश्न है मेरा विचार तो यह है कि उन्हें स्वतन्त्रता हो परन्तु यूरोप और अमरीका की सी नहीं।

नयना को बीच में बोलना ही पड़ा—स्त्रियों की आजादी से आखिर आप लोग इतना डरते क्यों हैं?

वह हंस पड़ी तो कमरे में हंसी की एक मधुर स्निग्ध चांदनी सी बिखर पड़ी। प्रेमलता ने हंसी में भाग नहीं लिया वह मन में कुछ सोच सी रही थी।

रामकुमार ने मुस्कराते हुए कहा—तुम्हारी आजादी से हम डरते नहीं पर तुम्हारी रक्षा का भार जो हमारे ऊपर सदियों से चला आ

रहा है उसी के कारण तो हम चाहते हैं कि स्त्रियां इस प्रकार की आजादी की ओर न बढ़ें जहां पहुँच कर वे अरक्षित हो जायं ।

नयना कुछ कहने जा रही थी कि उसकी दृष्टि प्रेमलता की गम्भीर आकृति पर जाकर टिक गई, उसने कहा—प्रेमलता बहिन आप चुप बहुत हैं ।

प्रेमलता ने अपने अधरों पर बरवश मुस्कान लाते हुए कहा—कोई विशेष बात नहीं है—फिर रामकुमार की ओर देख कर कहा—आप लोगों के मस्तिष्क में यह जो भाव भर गया है कि स्त्रियों की रक्षा की जिम्मेदारी आप लोगों पर है यही आपका भ्रम है । प्रकृति का काम इस सिद्धान्त के विरुद्ध है ।

रामकुमार प्रेमलता की ओर आश्चर्य के साथ देख रहा था । उसने यह बात ऐसे ढंग से कही थी कि रामकुमार को लगा जैसे वह उसके साथ विवाद करने के लिए उद्यत है । वह चुप हो गया ।

नयना ने पति को चुप हो जाते देखा तो बोली—आपको शायद यह पता नहीं है कि बहिन प्रेमलता यहां के जाग्रत-नारी-संघ की सर्वेसर्वा हैं ।

प्रेमलता ने नयना की ओर देखा । उसे यह सब कैसे ज्ञात हो गया । रामकुमार को आश्चर्य हुआ । बोला—जाग्रत-नारी-संघ क्या है ?

प्रेमलता को कहना पड़ा—स्त्रियों को देश, जाति और समाज के प्रति उनके कर्तव्य को बताने तथा उन्हें घर की चहार-दिवारी और दासत्व के कारावास से निकल कर बाहर के मुक्त वायुमण्डल में लाना ही संघ का उद्देश्य है ।

‘ओह, तो आपके विचार बहुत ही उच्च हैं ।’ रामकुमार ने कहा । ‘ऐसा ही कोई संघ युवकों के लिए भी शायद यहां है ।’

‘जी हां, उसके कर्ताधर्ता वही कांतिकुमार जी ही हैं ।’

रामकुमार के अधरों पर एक विचित्र प्रकार की मुस्कान खेल गई; उसने कहा—ओह, तुम भी शायद आपका और कांतिकुमार का साथ है ।

रामकुमार की यह बात प्रेमलता को बहुत बुरी लगी। उसने कहा—  
जी हां, मुझे उनके उद्देश्यों से सहानुभूति है।

बात यहीं समाप्त हो गई। प्रेमलता काम का बहाना कर अपने कमरे में चली गई।

नयना के चले जाने के पश्चात् निशीथ भीतर आया तो प्रेमलता को उसने अपने कमरे में बैठी कुछ लिखते पाया। पति को आते देख उसने कलम रख दी और निशीथ को देखती रही—जैसे उसे आश्चर्य हो रहा था।

निशीथ ने पास आकर कहा—प्रेम, तुम चली आईं उन लोगों ने क्या सोचा होगा ?

‘इसमें सोचने की बात क्या है ? मुझे काम जो था।’

‘किन्तु.....’

‘किन्तु क्या ? हमें इन छोटी-छोटी बातों की ओर ध्यान न देना चाहिये नहीं तो एक दूसरे की भूलों पर विचार करने में ही हमारा जीवन समाप्त हो जायगा।’

‘सामाजिक जीवन में हमें.....’

‘हमारा कर्तव्य तो बहुत कुछ है किन्तु हम कर कहाँ पाते हैं। आप ही सोचें कांति के साथ जो व्यवहार हुआ है क्या वह ठीक था ?’

‘मैंने तुम्हारे कहने का अभिप्राय नहीं समझा।’

‘कोई हमारे यहां आवे तो उसकी इस प्रकार उपेक्षा करना क्या उचित है ?’

‘कांतिकुमार की उपेक्षा नहीं हुई।’

‘और वह था क्या ? यदि उपेक्षा न की जाती तो क्या वह तुरन्त ही चले जाते।’

‘मैं इसे उपेक्षा नहीं समझता।’ निशीथ ने जोर देकर कहा।

‘पर मैं समझती हूं।’ कहकर प्रेमलता लिखे हुए कागज को इकट्ठा करने लगी।

निशीथ कुछ सोचता हुआ बाहर चला गया।

[ ११ ]

दूसरे दिन समाचार मिला कि सहसा डाक्टर शिवाधार की तबीयत खराब हो गई है। प्रेमलता पिता को देखने गई तो साथ महाराजिन को भी लेती गई। डाक्टर की देखभाल कौन करेगा। निशीथ के लिये खाना इत्यादि बनाने का काम उसने नए पहाड़ी नौकर के ऊपर छोड़ दिया। जाने क्यों प्रेमलता महाराजिन को छोड़ नहीं जाना चाहती थी।

प्रेमलता चली गई तो निशीथ सोचता रहा—प्रेमलता पहले जब अपने पिता के यहाँ गई है कभी किसी नौकर को अपने साथ नहीं ले गई परन्तु इस बार वह महाराजिन को अपने साथ ले गई है। पिछले दिनों की घटनाओं पर वह विचार कर रहा था; एक-एक घटना क्रमबद्ध अपनी कहानी जैसे आप ही कह रही हो। .....तो क्या प्रेमलता को उस पर संदेह है, वह शायद समझती है कि मैं 'बड़ी' को प्रेम करता हूँ। ..... अह .. ह ...

निशीथ जी खोलकर हंसने लगा। तभी नौकर ने आकर कहा—आप से मिलने के लिये उस दिन वाली महिला आई है।

निशीथ को आश्चर्य हुआ—कौन ?

'अभी जो उस दिन अपने पति के साथ आई थी।' नौकर ने उत्तर दिया।

निशीथ ने सोचा नयना है शायद; नौकर से कहा—बुला लाओ।

नयना ने कमरे में प्रवेश किया। निशीथ ने उसकी ओर देखा। नयना के अवरो पर एक जादूभरी मुस्कान खेल रही थी। एक हलके पीले रंग की साड़ी और काले रङ्ग का ब्लाउज उसने पहन रखा था। उसका यौवन उभरा आ रहा था। निशीथ ने उसकी ओर देखा तो क्षण भर देखता ही रहा। किन्तु निशीथ नयना को जैसे भरपूर देख न पा रहा था उसकी आँखें जाकर उसके मुख पर टिक गई थीं, उसकी साड़ी का रङ्ग भी शायद निशीथ को अब स्मरण नहीं रह गया।

वह नयना के मुख की ओर देख रहा था ।

नयना ने कमरे में प्रवेश करते हुये कहा—नमस्ते निशीथ, मुझे इस प्रकार यहाँ देखकर तुम्हें आश्चर्य होगा ।

निशीथ मुस्करा उठा, बोला—हाँ आश्चर्य तो अवश्य हो रहा है क्योंकि मुझे आज तुम्हारे आने की आशा नहीं थी ।

‘क्यों आशा नहीं थी ? तुम तो जानते हो कि जब मैं यहाँ हूँ तो किसी भी समय आ सकती हूँ ।’

निशीथ ने कोई उत्तर न दिया । तो नयना ने फिर कहा—उस दिन मैं अपने पति के साथ आई थी और तुम्हारी पत्नी भी थीं, इसलिये मैं तुमसे बात न कर सकी थी . . .

निशीथ उसकी बात का अभिप्राय समझने का प्रयत्न कर रहा था ।

नयना क्षणभर के लिये चुप हो गई परन्तु फिर उसने कहा—तुम्हें मेरा पत्र मिला था न ?

‘हाँ ।’

‘पर तुमने उत्तर नहीं दिया ?’

‘उत्तर देने की बात मैं सोच ही रहा था कि तुम मिल गईं ।’

‘आये क्यों नहीं कभी मेरे यहाँ तुम ।’

फिर क्षणभर रुक बोली—मुझे आना ही पड़ा ।

निशीथ ने कुछ उत्तर न दिया, देता भी क्या ?

नयना खिड़की के बाहर की ओर देख रही थी, सहसा उसने खिड़की से अपनी दृष्टि हटाकर कमरे में चारों ओर देखने लगी । पुस्तकों की आलमारी देखकर बोली—इन पुस्तकों ने तुम्हारे दिमाग को खराब कर रखा है ।

निशीथ हँस पड़ा । नयना ने उसकी ओर देखते हुये कहा—निशीथ मैं जानती हूँ तुम मुझसे धृणा रखते हो; चाहते होगे कि मैं यहाँ से बहुत दूर रहूँ किन्तु फिर भी मैं चाहती हूँ कि तुम . . . .

कंठ उसका रुंध गया। निशीथ के अंतर में नयना के लिये कभी जो स्नेह सुरक्षित था वह उभर कर प्लावित हो उठा। उसने कहा—नयना, तुम्हें ऐसा सोचना न चाहिये। मुझे तो तुम्हें वहाँ देखकर प्रसन्नता ही हुई है।

बात का विषय बदलने के उद्देश्य से निशीथ ने पूछा—नयना अपने पति के साथ तुम तो बहुत से शहर रह आई।

‘रह नहीं आई; मैं तो पानी की धारा पर बहता हुआ तिनका हूँ।’

निशीथ को नयना की बात कुछ अजीब सी लगी। वह अपने मन में सोचने लगा, नयना अपने जीवन में स्थिरता का अनुभव नहीं करती। क्यों? ‘बहता हुआ तिनका’ तो वह अब नहीं रही। उसका एक जीवन है; एक निश्चिन्त सा क्षेत्र है जिसमें वह बराबर आगे बढ़ती रह सकती है।

उसने कहा—अभी यही तो मैं सोच रहा था नयना !

बात नयना ने अपने ‘व्यक्ति’ को लक्ष्य करके कही थी पर निशीथ ने उसे उस संकीर्ण क्षेत्र से बाहर लेकर बोला—तुम ठीक ही कहती हो नयना ! हम बहते हुए तिनके के समान हैं; अपना कोई लक्ष्य नहीं है; अपना आधार ही तरल है; बहना उसका जीवन है। जिधर भी वह हमें बहा ले जायगा हमें बहना पड़ेगा ही। कभी नदी का वह भाग देखा है जहाँ धारा बड़ी तीव्र हो उठती है, वहीं मोड़ के पहले कभी देखा है कितने ही तिनके, कूड़ा-करकट, पानी पर तैरते हुए फेन, सभी आकर क्षण भर को रुक जाते हैं। तैरते हुए ! धारा उन्हें दूर से वहाँ तक लाती है और वहाँ छोड़ देती है जहाँ एक मोड़ है। धारा बहती रहती है पर वे छूट जाते हैं, उस स्थिर जलराशि पर चक्कर काटने के लिए। यह सब कितना रहस्यमय है नयना.....।

नयना ने चौंक कर तुरन्त ही उत्तर दिया—हां निशीथ बड़ा ही आश्चर्यजनक ? हमारे जीवन से यह सब कितना मिलता-जुलता है।

‘हां, यही तो मैं कभी-कभी सोचने लगता हूँ कि यह सब जाने किस प्रकार होता रहता है।’



‘और इस प्रकार के जीवन में हमारा लक्ष्य ही क्या हो सकता है, लक्ष्यहीन, आधारहीन अपना यह जीवन है।’

नयना ने यह बात किस लिए कही यह निशीथ नहीं समझ सका इसलिए बोला—यह बात तो हम नहीं कह सकते नयना ! हमारे जीवन का लक्ष्य भी है और आधार भी किन्तु...

‘किन्तु उस आधार का उपयोग हमारे लिए क्या जब हमें तिनके की भांति बहना ही हो।’

नयना ने यह बात कुछ ऐसे ढंग से कही कि निशीथ को हंसी आ गई। क्षण भर वह चुप रहा फिर उठ कर वह कमरे में टहलता हुआ बोला—प्रेमलता, अपने पिता के यहाँ गई है; मैं अकेला ही हूँ। चाय पियोगी।

‘पी सकती हूँ।’ नयना ने उत्तर दिया। निशीथ ने पहाड़ी को पुकारा; नौकर नया है, मालिक की आवाज सुनते ही दौड़ आया। निशीथ ने चाय बनाने को कह दिया। जब नौकर चला गया तो निशीथ ने कहा—प्रेमलता के पिता बीमार हो गए हैं।

‘मुझे सब मालूम है।’ नयना ने मुस्करा कर कहा। तो निशीथ की आंखें आश्चर्य से फैल सी गईं। वह नयना की ओर देखता रहा। आखिर यह नयना को कैसे मालूम हो गया। तभी नयना ने मुस्कराते हुए कहा—तुम्हें आश्चर्य हो रहा है पर सच बात यह है कि मुझे डाक्टर साहब की बीमारी और प्रेमलता के वहाँ जाने की बात मालूम हो गई थी इसीलिए मैं आई भी। सोचा अकेले में तुमसे कुछ बातें कर सकूंगी।

निशीथ चुप रहा। वह इस आश्चर्यजनक नारी को देख रहा था। नयना चाहती क्या है यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। नयना उसके निकट सदैव ही एक पहेली बनी रही। इस पहेली को सुलझाने में उसे सदैव ही असफलता मिली। और जब प्रेमलता ने आकर उसे अपना लिया तो निशीथ ने सोचा था कि अब सदा के लिए

वह नयना की पहेली को उलझन से बच गया। परन्तु देखता है कि उसकी यह आशा व्यर्थ प्रमाणित हो रही है और वह पहेली आज फिर उसके सामने है।

टहलता-टहलता वह पुस्तकों की आलमारी के पास पहुँच कर रुक गया। पल भर खड़ा रहा फिर नयना की ओर मुड़ कर बोला—जीवन की स्थिरता से परिचित होते हुए भी हम जैसे इसे भूल जाते हैं और नीति-अनीति, सच-भूठ सभी से अपने कार्य की सिद्धि का प्रयत्न करते हैं।

‘यही तो दुख की बात है निशीथ को हम जान कर भी—’

‘अब देखो मेरी पुस्तक के पब्लिशर को; बूढ़ा व्यक्ति है; मुझे उसकी स्थिति पर दया आती है। उसने मेरे साथ पुस्तक में साक्षा किया था किन्तु अब वह उसे तोड़ देना चाहता है—नहीं, कहना चाहिए तोड़ चुका।’

‘बूढ़ा बड़ा धूर्त है?’ नयना जोर से हँस पड़ी—‘निशीथ मुझे तुम्हारी बातों पर हँसी आती है। तुम आखिर यह क्यों समझते हो कि तुम कभी दुनियाँ को समझ सकोगे; तुम्हें अपनी पुस्तकों के बाहर कुछ भी देखने का अवसर जो कभी नहीं मिला।

निशीथ कुछ कह न सका। सचमुच उसे हर बार ही घोखा खाना पड़ रहा है। तभी नयना ने पूछा—‘तुम्हारी कौन-कौन सी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। मुझे तो केवल एक ही देखने को मिली थी।

निशीथ ने आलमारी से तीन पुस्तकें निकाल कर रख दीं। बोला—‘यह दो पुस्तकें अभी प्रकाशित हुई हैं। पर अब मैंने निश्चय कर लिया है कि अब मैं पुस्तकें प्रकाशित नहीं करूँगा।

नयना उन पुस्तकों को देख रही थी। निशीथ की बात शायद उसने नहीं सुनी, बोली—‘ओह, कितनी सुन्दर पुस्तकें हैं। निशीथ तुम्हें अपनी इन पुस्तकों पर कितना गर्व होगा—और प्रेमलता को भी।

निशीथ मुस्करा उठा, पर बोला कुछ नहीं। प्रेमलता ने उसकी पुस्तकों की कभी इतनी प्रशंसा नहीं की।

‘यह पुस्तक तो मैंने पढ़ी है। बड़ी सुन्दर पुस्तक है। मुझे आश्चर्य होता है निशीथ कि तुम यह सब कैसे लिख लेते हो।’

निशीथ उसकी ओर देखता रहा पर कहा कुछ नहीं। उसके मस्तिष्क में विचार उलझ रहे थे। नयना पुस्तकों को देखती रही ! शांति रही।

फिर सहसा निशीथ ने कहा—नयना, जानती हो स्त्री यदि चाहे तो पुरुष को बहुत कुछ बना सकती है।

नयना ने आश्चर्य के साथ निशीथ की ओर देखा। निशीथ की बात का अभिप्राय कुछ उसकी समझ में न आया। वह उसकी ओर देखती ही रही।

निशीथ ने फिर कहा—पर नहीं स्त्री यह सब कुछ कर नहीं सकती। वह पुरुष की उन्नति में एक अवरोध ही बन कर रहती है।

नयना फिर भी चुप रही। निशीथ उसी प्रकार क्षण भर स्थिर सा खड़ा रहा फिर खिड़की के पास जा बाहर के खिले हुए फूलों का हिलना देखने लगा।

कुछ देर बाद नयना कुर्सी पर से उठी; आकर उसने निशीथ के कंधे पर हाथ रख दिया। चौंक कर निशीथ ने उसकी ओर देखा तो नयना ने कहा—क्या सोचने लगे तुम ?

‘कुछ तो नहीं नयना ! मुझे जमा करो। मैं जाने क्या-क्या कह गया।’

‘तुमने कुछ नहीं कहा। मैं तो चाहती हूँ तुम इसी प्रकार सदैव ही मुझसे बातें करते रहो।’

‘नयना !’ निशीथ ने आश्चर्य से कहा।

‘निशीथ !’ नयना उसी प्रकार गम्भीर थी।

\*

\*

\*

नयना चली गई तो निशीथ अपने विचारों में उलझा बैठा रहा। नयना की बातें बार-बार उसके मस्तिष्क में आ रही थीं। आज उसने नयना की आंखों में एक नई ज्योति देखी थी। उसकी आंखों के सम्मुख

इस समय भी जैसे नयना खड़ी हो और वह पूछ रहा था—नयना तुम्हारा जीवन आधार हीन क्यों है क्यों तुम अपने को 'बहता हुआ तिनका' कहती हो जिसका कोई लक्ष्य नहीं ।

तभी जैसे उसे नयना की आकृति कहती सी जान पड़ी । सचमुच ही नयना का जीवन धारा के ऊपर बहते हुए तिनके की भांति ही तो है । वह अपना लक्ष्य बना नहीं सकती, अपनी इच्छा के अनुसार वह जीवन में अग्रसर नहीं हो सकती ठीक एक बहते हुए तिनके की ही भांति ।

नयना और रामकुमार ! तो क्या दोनों के जीवन में साम्य नहीं है । क्या नयना को अपने इस चुनाव पर असंतोष हो रहा है । वह उसे चुन सकती थी परन्तु उसने निशीथ को स्वयं ही नहीं चुना और अब—नहीं यह नहीं हो सकता ! नयना और रामकुमार ! उनके जीवन में असंतोष नहीं हो सकता । एक उसका और प्रेमलता का जीवन है । पहले उसने सोचा था प्रेमलता के साथ वह सुख के साथ जीवन व्यतीत कर सकेगा । उसके अभाव की पूर्ति यह नारी कर सकेगी पर आज वह यह अनुभव कर रहा है कि यह उसकी भूल थी । प्रेमलता ! नहीं.....

ऐसी भूल सम्भव है नयना से भी हो गई हो । नयना का आज का जीवन असंतोषपूर्ण हो उठा हो । और जब हमारा जीवन असंतोषपूर्ण हो उठता है तभी तो हम उससे पलायन चाहने लगते हैं । हमारा यह पलायन बढ़ता केवल हमारे असंतोष का ही तो परिचायक है ।

चुनाव में कितनी बड़ी भूल उसने की । जैसे अभी कल की ही बात हो । निशीथ के सम्मुख वह घटना नाच गई ।

उस दिन निशीथ ने नयना से पूछा था तो उसने कहा था—निशीथ, मैंने विचार कर लिया हम विवाहित होकर सुखी न रह सकेंगे । तुम्हें प्रेम अवश्य ही मैं करती हूँ परन्तु विवाहित जीवन के लिए प्रेम के अतिरिक्त कुछ और भी चाहिये ।

‘कुछ और क्या ?’

‘एक प्रकृति !’

निशीथ ने कोई उत्तर नहीं दिया था । 'एक प्रकृति' की बात उसके मस्तिष्क में घूम कर उसे कष्ट देती रही ।

तो क्या नयना और रामकुमार की प्रकृति एक है !

इस बार जब नयना उसे मिलेगी तो वह नयना से अवश्य पूछेगा—  
क्या उसे अपने जीवन से संतोष है ।

## [ १२ ]

परन्तु पूछने का अवसर निशीथ को शीघ्र न मिल सका । डाक्टर शिवाधार अच्छे हो गये परन्तु कमजोरी अधिक थी । महाराजिन को प्रेमलता उनकी देखभाल करने के लिए छोड़ आई थी । घर आकर प्रेमलता का संघ संबन्धी कार्य-क्रम फिर उसी प्रकार चलने लगा । संघ में अब काफी सदस्यायें हो गईं थीं । आय भी उसकी काफी थी । नगर में एक धनी व्यक्ति की लड़की का विवाह कलकत्ते के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ लुंगामल के लड़के के साथ निश्चित हुआ । लड़की संघ की सदस्या थी इसलिये प्रेमलता ने संघ की ओर से बर बधू को आमन्त्रित किया । उस दिन संघ की इमारत को खूब सजाया गया ।

अपने लड़के के साथ स्वयं सेठ जी तथा उनके कुछ निकट सम्बंधी भी आये । प्रेमलता ने सबका स्वागत किया, उन्हें संघ के उद्देश्य बताये । अन्त में जाते समय सेठ जी ने अपने लड़के के विवाह के उपलक्ष्य में संघ को पाँच हजार रुपया अनाथ स्त्रियों के पालन-पोषण का प्रबन्ध करने के लिए दिये ।

संघ के इस नये कार्य ने प्रेमलता को और भी व्यस्त बना दिया । अब उसे तनिक भी समय न मिलता । दिन रात वह संघ के कार्यों में ही व्यस्त रहती ।

निशीथ को एक कान्फ्रेस के सम्बन्ध में लाहौर जाना था । उसने प्रेमलता से कहा यदि वह भी साथ चले ती अच्छा हो ।

पति की बात प्रेमलता ने ध्यान पूर्वक सुनी बोली—तुम्हें कान्फ्रेस में भाग लेना है तो तुम्हीं जाओ मैं जाकर वहाँ क्या करूँगी ?

‘क्यों, मेरे साथ न रहोगी ।’ निशीथ ने उत्तर दिया । और उसे कुछ सूझ न रहा था ।

‘पर मेरे बिना साथ रहे भी तो काम तुम्हारा चल सकता है और जानते हैं संघ की सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है यदि मैं कहीं चली जाऊँ तो सब काम बिगड़ जायगा ।’

‘यह तुम्हारी भूल है प्रेम, मनुष्य यह समझता है कि वह कुछ करता है, उसके कारण कितनों का ही जीवन चलता है, उस पर कितनों की जिम्मेदारी है परन्तु यह सब भूल है । ईश्वर की सत्ता के लिये उसकी यह धारणा प्रहार की भांति है । उसे इस प्रकार की बातें सोचने का कोई अधिकार नहीं ।’

‘यह सब तुम्हारे दर्शनशास्त्र की बातें हैं परन्तु व्यवहारिक जीवन में तो हम ऐसा नहीं कर सकते ।’ प्रेमलता ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया ।

प्रेमलता की यह मुस्कान निशीथ को व्यङ्ग्य सी प्रतीत हुई । उसने कहा— प्रेम, यही तो हमारी भूल है । हम समझ लेते हैं कि हमारा व्यवहारिक जीवन हमारे दर्शनशास्त्र से दूर की वस्तु है । पर सोचो, आज संघ का काम तुम्हारे ऊपर है तुम उस के लिये अपने को जिम्मेदार समझती हो पर यदि कल किसी कारण संघ को तुम्हारी सेवा प्राप्त होना बन्द हो जाय तो क्या हम आशा करें कि संघ टूट जायगा । नहीं, सम्भव है कोई दूसरा योग्य व्यक्ति आकर उस कार्य को संभाल ले ।

इतना ही नहीं जब तक हम यह अनुभव करने लगते हैं कि अमुक कार्य बिना हमारे नहीं हो सकता तो हम अपना ही नहीं दूसरों का भी अहित करते हैं, दूसरों को उस कार्य के करने का हम अवसर नहीं देते ।’

‘यह ठीक है परन्तु जब तक मनुष्य पर कोई जिम्मेदारी रहेगी तब तक तो वह अवश्य ही इस प्रकार का अनुभव करेगा । यदि वह यह न सोचे तो वह काम भी तो नहीं कर सकता !’

‘मनुष्य अपनी भूल को छिपाने के लिए एक आश्रय खोजता है।’ निशीथ ने यह बात साधारण रूप से कही परन्तु प्रेमलता को लगा जैसे बात उसे ही लक्ष्य करके कहीं गई हो। उसने कहा—तुम मनुष्य को समझने में ही भूल करते हो।

निशीथ को प्रेमलता के रुख से ऐसा प्रतीत हुआ कि कहीं कुछ खोटा अवश्य है परन्तु उसने कुछ कहा नहीं। बात यहीं समाप्त हो गई। निशीथ को लाहौर जाना था वह चला गया। पर प्रेमलता बराबर सोचती रही निशीथ उससे कितनी दूर हटता चला जा रहा है; एक बड़ी खाई उनके बीच तैयार होती जा रही है किन्तु वह कुछ कर न पा रही थी। वह नहीं चाहती कि वह किसी प्रकार निशीथ को निराश करे पर निशीथ ही आखिर उससे क्यों इस प्रकार रहता है।

निशीथ लाहौर से पन्द्रह दिन पश्चात् लौटा। देहली में उसके एक मित्र हैं; उनके यहाँ रुक जाना पड़ा। जब वह लौटा तो प्रेमलता ने इतनी देर में लौटने का कारण नहीं पूछा। इन पन्द्रह दिनों में प्रेमलता ने उसे एक पत्र भी नहीं भेजा था। हाँ, लाहौर से चलते समय निशीथ ने प्रेमलता को लिखा था कि वह कुछ दिन के लिये अपने एक मित्र के के यहाँ देहली में ठहरेगा। परन्तु निशीथ को यह सब अजीब सा नहीं लगा, उसे प्रेमलता के स्वभाव का ज्ञान है। वह जानता है कि इस समय प्रेमलता जिन विचारों के साथ बह रही है उनमें उसके लिये कोई स्थान नहीं है।

रात मेल से वह आया था। घर पहुँचा तो महाराजिन ने आकर द्वार खोले। पूछा तो मालूम हुआ प्रेमलता अभी नहीं आई; आज संघ ने नगर की महिलाओं की सभा की है। वहीं गई हैं।

महाराजिन को देख निशीथ ने कहा—कहो बड़ी, डाक्टर साहब के यहाँ से कब आ गईं।

महाराजिन ने मुस्करा कर उत्तर दिया—अभी कल आई। अब वे अच्छे हो गये हैं।

महराजिन की ओर कुछ अजीब दृष्टि से देखते हुए निशीथ ने कहा, मैंने तो सोचा था कि अब तुम वहीं रहोगी।

महराजिन की आकृति फीकी पड़ गई। जैसे अपराधी की भांति वह निशीथ के सम्मुख सिर झुकाये खड़ी रही। फिर बिना कुछ उत्तर दिये चली गई।

निशीथ हंसता रहा। अजीब है यह निशीथ!

नयना से भेंट उसके दूसरे ही दिन हो गई। वह बाजार गया था, जूते की दूकान में बैठा जूते खरीद रहा तभी उसने देखा कि नयना अपनी मोटर से उतरी और हाथ में एक बेग लिये हुये बगल वाली बजाज़ की दूकान में चली गई।

सौदा जैसे अपने आप पट गया। जूते का डिब्बा हाथ में लिये बाहर निकला; क्षणभर रुका तभी दूकान की सीढ़ियाँ उतरते हुये नयना ने पुकारा—ओह, निशीथ नमस्ते।

निशीथ ने दृष्टि उधर की मुस्कुरा कर कहा—अरे बजाज़ की दूकान से तुम इतनी जल्दी निकल आईं? नहीं, स्त्रियां तो घंटों पहले दूकान से हट ही नहीं सकतीं।

‘तो तुमने मुझे जाते देखा था क्या?’

‘हां, मैं इस दूकान पर बैठा जूते खरीद रहा था। दूकान से निकल अब मैं सोच रहा था....’

‘कि मुझसे मिलो या नहीं।’ नयना ने बात काटी।

‘हां नयना, ठीक यही बात सोच रहा था। इधर बहुत दिनों से तुमसे भेंट नहीं हुई। मैं भी बाहर चला गया था अभी कल ही आया हूँ। इसलिये मन आ रहा था कि तुमसे मिल अवश्य लूं।’

‘ओह, निशीथ कभी-कभी तुम्हें सचमुच दूसरों का ध्यान रहता है।’

निशीथ ने कोई उत्तर न दिया। मोटर के निकट आये तो शोफर ने दरवाजा खोला। नयना ने निशीथ से कहा—बाजार के कोलाहल से मैं दूर जाना चाहती हूँ। चलो घर चलें।



मन्त्रमुग्ध सा निशीथ मोटर में बैठ गया। चुप, गुमशुम सा। मोटर चलने लगी तो नयना ने कहा—क्या सोच रहे हो।

निशीथ ने नयना की ओर देखते हुये कहा—सोचता हूँ क्या हमें संयोग ही इस प्रकार मिला देता है।

‘संयोग।’

‘हाँ, और क्या? हम एक दूसरे को संयोगवश ही तो मिल जाया करते हैं।’

हंस पड़ी नयना—ओह, संयोग ही तो संसार में सभी के मिलने का कारण है।

‘अब तक मैंने यह कभी नहीं माना था किन्तु देखता हूँ कि यह मेरा भ्रम था। संयोग हमारे पग-पग का संचालक है।’

नयना ने कुछ नहीं कहा। निशीथ चुप हो गया। उसकी विचार धारा चल रही थी। सहसा उसने नयना का हाथ पकड़ लिया और बोला—नयना तुम मेरी ओर देखो।

नयना ने आँखें उठाई, किन्तु नीचे गिरा ली। निशीथ उद्विग्न सा हो रहा था, बोला—नयना आँखें ऊपर करो, मैं उन्हें देखना चाहता हूँ, उनकी बातें पढ़ने के लिए मैं उत्सुक हूँ।

‘निशीथ!’ एक कराह की भाँति नयना के मुँह से निकल गया। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें निशीथ के सम्मुख खुली थीं। क्षण भर उनकी ओर देखकर निशीथ ने पूछा—नयना, क्या तुम सुखी हो?

नयना ने आँखें नीची कर लीं, पर कह न सकी कुछ। पर निशीथ जैसे आज नयना से यह पूछ लेने पर तुल ही गया हो। बोला—नयना तुम्हें सच-सच बताना होगा क्या तुम अपने पति के साथ सुखी हो।

नयना की वेदना उभर आई, बोली—निशीथ मुझमें अनुभव करने की शक्ति ही नहीं रह गई है। असंतोष ही मनुष्य को अपने अस्तित्व का ज्ञान कराता है। पर मैं जैसे उससे भी दूर पहुँच गई हूँ। कुछ मुझे ज्ञान ही नहीं पड़ता।

‘नयना जब से तुम आई हो यहाँ और हमारी भेंट इतने वर्षों बाद हुई है तभी से मैं तुम्हें ध्यान पूर्वक देखता आ रहा हूँ, तुम्हारी बात पर मैंने घंटों विचार किया है। उस दिन जब तुम मेरे यहाँ आई थीं तो कहा था कि ‘मुझे आना ही पड़ा।’ मैंने घंटों तुम्हारी इस बात पर विचार किया है। नयना, अब हम दोनों विवाहित हैं; एक दूसरे से बहुत दूर।’

नयना का कंठ जैसे व्यथा से रुंध गया हो, उसने कहने का प्रयत्न किया—मैं ...

पर बात न निकल सकी। निशीथ ने कहा—नयना, तुम्हें मैं भली प्रकार पहचानता हूँ। तुम्हारे ऊपर कोई कलँक लगना मेरा लक्ष्य नहीं है। जानता हूँ कि तुम मुझसे वासना-हीन हृदय से मिलती हो पर तुम्हारी इन आंखों की छाँह में एक असन्तोष झलका करता है; यह मुझसे नहीं छिप सकता।

नयना ने एक निश्वास ली, बोली—अस करो निशीथ ?

‘नहीं नयना, अपने असन्तोष को प्रगट कर ही अपने हृदय को हम हलका कर पाते हैं।

‘पर निशीथ अब उसे कह कर ही हम क्या कर सकते हैं। तुम्हारे निकट आ संतोष मैं अनुभव करती हूँ; बस इसीलिये—’

‘मैं यह समझता हूँ नयना।’

नयना का हृदय उमड़ रहा था। उसने कहा—निशीथ मैंने एक भारी भूल की कि तुम्हें ठुकरा कर मैंने एक ऐसे व्यक्ति को अपने जीवन का साथी चुना जिसे मैं बहुत कम जान पाई थी। मेरी यह भूल ही मेरे जीवन में घुन सी लग कर बैठ गई है। विशाल समुद्र के बीच मैं आज अपने को उस यात्री के रूप में पा रही हूँ जिसका जहाज चट्टानों से टकरा कर टूट गया है और वह एक तख्ते के सहारे अपने जीवन की रक्षा के लिये हाथ पैर फेक रहा है।

‘पर नयना —’

‘नहीं मुझे कह लेने दो। और जब मैं यहाँ आई और तुम्हें देखा तो मैंने सोचा कि तुमसे पहले की ही भांति सहायता लेती रहूँ। इसी लिये मैंने तुमसे उस दिन कहा था कि मुझे आना पड़ा। निशीथ, मुझे आश्रय की आवश्यकता है और वह मैं केवल तुम्हीं से प्राप्त कर सकती हूँ, इसीलिये तुम्हारे पास आना पड़ता है।

निशीथ ने दर्द भरे स्वर में कहा—नयना !

...

...

...

नयना का बंगला आ गया था। निशीथ उतर पड़ा। बिना कुछ कहे नयना हाल की ओर बढ़ी तो निशीथ ने कहा—अच्छा—नयना मैं चलता हूँ।

‘क्यों?’ नयना ने आश्चर्य से पूछा; फिर सहसा उसकी दृष्टि निशीथ पर पड़ी। अधिक कुछ वह बोल न सकी। निशीथ सिर डाले बंगले के बाहर जा रहा था और नयना खड़ी देख रही थी। निशीथ चलते हुये भी उसे नाव सा स्थिर दीख रहा था।

नयना के पति दौरे पर गये हुये थे। जब निशीथ सड़क पर चला गया तो नयना अपने कमरे में चली गई और पलंग पर गिर कर फूट फूट कर रोने लगी। उसे लग रहा था उसने निशीथ को दूसरी बार एक भारी चोट पहुँचाई है। ओह ! जीवन में वह निशीथ को कभी सुख न पहुँचा सकी। उसकी वेदना बढ़ कर सागर की भांति फैल उठी।

और निशीथ चला जा रहा था सोचता हुआ। अतीत की सारी घटनायें एक-एक करके उसकी आँखों के सामने आ रहीं थी। यदि उस समय नयना ने भूल न की होती तो उनका जीवन कितना सुखमय होता पर भूल तो हममें से कोई न कोई करता ही। यदि कोई भूल न करे—पर करे कैसे न; हमें हमारे कामों के अंतिम परिणाम का पता जो नहीं रहता।

निशीथ को बात याद आ गई—सचमुच यह जीवन शतरंज की ही एक बाजी है। उसी भांति मुहरे रखे जाते हैं। हर

आदमी अपनी सफलता के लिये चालें चलता है पर उसे पता नहीं कि विजय किस तरफ होगी। यदि यही वह पहले से जान जाय तो सारा खेल ही समाप्त हो जाय।

निशीथ पागलों की भांति हंस पड़ा।

उस दिन वह बड़ी रात तक सिविल लाइन की सड़कों पर टहलता रहा। जब घर पहुँचा तो बहुत अधिक रात जा चुकी थी।

प्रेमलता सो रही थी। निशीथ के आने की आहट पा सोचा इतनी रात तक यह कहाँ रहे।



### [ १३ ]

प्रत्येक मनुष्य के जीवन का एक विशेष लक्ष्य होता है, प्रतिपल वह उसी लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है। घटनायें कभी प्रतीक्षा नहीं करती और जब हमें जीवन से असन्तोष हो उठता है तो हम यथार्थता से दूर जाने का प्रयत्न करते हैं। भविष्य के साथ जो दुःखद अनुभव हमें दिखाई पड़ते हैं उन्हीं के भय से हम अपने को सिकता राशि में छिपाने का प्रयत्न करते हैं; वैसे ही जैसे शुतर्भुर्ग तूफान आते देख अपना सिर सिकताराशि में छिपा लेता है। हम भी वर्तमान की विस्तृत मरु-भूमि में भविष्य के तूफान की कल्पना कर अपना सिर छिपाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु इससे होता क्या है। तूफान आता ही है और हमें उसमें पड़ना ही पड़ता ही है।

प्रेमलता के जीवन के क्षण बड़े सुख से बीत रहे थे। अपने लक्ष्य की ओर वह बराबर बढ़ती जा रही थी और मनुष्य अपने लक्ष्य के जितना ही निकट आता जाता है उतना ही अनुभव करता है कि वह सुखी है।

प्रेमलता ने जिस समय संघ की स्थापना की थी उसने यह कल्पना भी न की थी कि किसी समय यह एक इतनी बड़ी संस्था बन सकेगा परन्तु उसके परिश्रम और लगन ने संघ को आज इस स्थिति पर पहुँचा

दिया है कि शहर के सभी लोग उसे जानते हैं कितनी ही अनाथ—अनाश्रित स्त्रियाँ संघ के भवन में रहकर जीवन व्यतीत करती हैं।

प्रेमलता का अधिक समय अब संघ के कामों में ही व्यतीत होता है, उसे घर पर रहने का समय ही नहीं मिलता। निशीथ से वह इधर कई सप्ताह से नहीं मिल सकी। निशीथ के विरुद्ध प्रेमलता के हृदय में अनेक घटनायें सिमट कर इकट्ठी होती जा रही हैं। वह अनुभव करने लगी है कि अधिक समय तक वह पति के साथ नहीं रह सकती। कभी-कभी वह सोचती है उस समय की बात जब निशीथ इतना भोला था कि उसे अपनी पुस्तकों को छोड़कर अपने कपड़ों तक का ध्यान न रहता था। परन्तु अब वह निशीथ कुछ दूसरा ही है।

नयना बहुधा उसके यहाँ आती है। निशीथ कहता है नयना के साथ उसका पुराना परिचय है; उस समय वह उससे विवाह कर सकता था। परन्तु प्रेमलता इसे कैसे विश्वास कर ले। नयना के मिलने के पूर्व तो कभी इसका उल्लेख उसने किया नहीं। आज कल प्रेमलता को निशीथ की प्रत्येक बात में एक रहस्य दिखाई पड़ता है।

उस दिन शाम को नयना संघ से लौट रही थी, तो कोई तांगा न मिला इसलिए पैदल ही चल पड़ी बंगले से थोड़ी दूर पर मणि मिल गई। मणि प्रेमलता के सामने वाले बंगले में रहती है। निशीथ मणि के पिता के प्रति बड़ी श्रद्धा रखता है। इसलिये बहुधा संध्या समय उनके यहाँ जाकर बैठ जाता था। इधर कई दिन से निशीथ नहीं दिखाई पड़ा तो मणि को कुछ उदास सा लग रहा था। इसलिए आज वह टहलने निकल आई थी। प्रेमलता को देख उसने नमस्ते के लिये हाथ जोड़ दिये।

नमस्ते कर प्रेमलता ने पूछा—कहो मणि, टहलने जा रही हो क्या ?  
‘हाँ, तनिक जी ऊब रहा था सो निकल आई। पर अधिक दूर तक न जाऊँगी।

‘क्यों, घूम न आओ। बंगले के दरवाजे पर ही टहलना कोई टहलना है।’

मणि हंस पड़ी बोली—‘नहीं, मुझमें तुम्हारी ऐसी शक्ति नहीं है। मैं तो अकेले बाहर निकलते बहुत डरती हूँ।’

प्रेमलता हंसने लगी—‘बहुत डरती हो? क्यों? इसीलिये तो मैं कहती हूँ, तुम्हारी ऐसी पढ़ी लिखी लड़कियाँ भी जब बाहर निकलने से डरती हैं तो फिर दूसरों की कौन कहे। तुम संघ में आया करो।’

मणि ने कहा—‘संघ में आने की इच्छा तो बहुत थी पर समय नहीं मिलता। कालेज से आने के बाद थोड़ा आराम कर लेती हूँ और यही समय संघ में आने का है। किन्तु हाँ, छुट्टियों में आने का अवश्य प्रयत्न करूँगी।’

‘हाँ अवश्य!’ प्रेमलता ने कहा। दोनों साथ घर की ओर चल रही थीं। सहसा मणि ने कहा—‘स्त्रियों की स्वतन्त्रता की बात आप कहती हैं पर हम पढ़ी लिखी लड़कियाँ भी जब कभी अवसर पड़ जाता है तो बेकार प्रमाणित होती हैं। लोग हमारा अपमान करके चले जाते हैं पर हम उनका कुछ भी नहीं कर सकतीं।’

‘यह हमारी कमजोरी है हमें इसे दूर करना होगा।’

‘पर दूर वह कैसे हो। अभी पिछले साल की बात है मेरी तीन मित्र प्रदर्शनी देखने गई थीं। देखकर जब वे लौट रही थीं तो रात कुछ सुहावनी सी लगी। बहुत से लोग सड़क पर पैदल जा रहे थे। वे भी पैदल ही टहलती हुई चल पड़ीं। थोड़ी दूर चलने पर पीछे कुछ आदम पा उन्होंने जो मुड़कर देखा तो दो युवक चले आ रहे हैं। कुछ चौंक सी उठीं। प्रदर्शनी में भी यह लोग साथ ही साथ थे। पर सोचा संयोग होगा। इतने में ही एक आगे बढ़ आया। शीशे का एक लोटा उनकी ओर बढ़ाते हुये बोला—इसे भी लेते जाइये था।’

प्रेमलता को जैसे अधिक सुनने का धैर्य न हो, बोली—‘तो उन्हें वह उपहार लेकर दूसरा उपहार उनके गाल पर दे देना चाहिये।’

‘परन्तु साहस हममें जो नहीं है। यही तो मैं कह रही हूँ। अवसर पड़ने पर हमारे संस्कार हमारे हाथ पैरों को शिथिल बना देते हैं।’

प्रेमलता ने कहा—यह तुम्हारी भूल है मणि, प्रकृति ने संसार में प्रत्येक प्राणी को आत्मरक्षा के योग्य बनाया है। और जब कभी उसे अपने ऊपर कोई ख़तरा दिखाई देता है तब अपने आप ही वह आत्म-रक्षा के उपायों में लग जाता है।

बंगला आगया था मणि चली गई। तो प्रेमलता उसकी बातों पर विचार करती हुई अपने कमरे में चली गई। जब तक स्त्रियों को ऐसे अवसरों का नित्य ही सामना करना नहीं पड़ेगा तब तक वे अपनी रक्षा आप करने में समर्थ नहीं हो सकतीं। बहुत दिनों से प्रेमलता सोच रही थी संघ की सदस्याओं को आत्मरक्षा के साधन बताये जायँ। आज उसने निश्चय किया कि स्त्रियों को ऐसे अवसरों का सामना करने के लिये तो तैयार रहना चाहिये।

दूसरे ही दिन संघ में व्यायामशाला का प्रबन्ध हो गया। प्रेमलता ने स्त्रियों के लिये 'वाक्सिंग' ही सबसे उपयुक्त साधन समझा। 'वाक्सिंग' सिखाने का प्रबन्ध हो गया।

'वाक्सिंग' सीखने वाली स्त्रियों की संख्या बराबर बढ़ती जा रही है। संघ की सदस्याओं के अतिरिक्त और भी पास पड़ोस की स्त्रियाँ शाम को संघ में आ जाती हैं।

संघ का व्यय दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है इसलिये प्रेमलता ने अब निश्चय किया है कि वह संघ के अन्तर्गत ऐसे उद्योग धंधों को सिखाने का प्रबन्ध करेगी जिसमें संघ की आय भी बढ़े और स्त्रियाँ उसे सीखकर अपनी जीविका आप उपार्जन कर सकें।

## [ १४ ]

उस दिन की घटना के बाद मणि प्रेमलता के निकट आती जा रही है। अब वह बहुधा प्रेमलता के घर आती है और घंटों बैठी बातें किया करती है। प्रेमलता को भी यौवन के सुरभिपूर्ण क्षेत्र में प्रवेश करने वाली इस नारी के प्रति एक स्नेह सा हो गया है। जाने क्यों मणि के साथ प्रेमलता अपने वय-जन्य गाम्भीर्य को भूल सी जाती है।

आज संध्या समय लता बाहर नहीं गई हुई थी। प्रातः से ही उसका जीकुछ भारी सा हो रहा था। संघ में भी वह नहीं जा सकी थी। सो अपने कमरे में लेटी हुई थी। निशीथ आज कल संध्या समय बहुत देर में कालेज से लौटता है परन्तु इस ओर प्रेमलता का ध्यान कभी आकर्षित नहीं होता। पर आज जब वह एकान्त में लेटी थी तो उसे निशीथ के इस व्यापार पर आश्चर्य हो रहा था। आखिर कालेज से उठकर वह चला कहां जाता है जो इतनी देर हो जाती है। कालेज कुछ छुः बजे तो बन्द होता नहीं।

महाराजिन ने कमरे में प्रवेश किया; पर प्रेमलता को उसके आने की आहट जैसे मिली ही न हो। वह उसी प्रकार लेटी रही तो महाराजिन निकट आ कर खड़ी सो गई; बोली—आज आपकी तबीयत ठीक नहीं है क्या ?

दिन भर महाराजिन को प्रेमलता के निकट आने का अवसर ही नहीं मिलता। घर के प्रायः सारे कामों का उत्तरदायित्व उसी पर है। सो उसे अवकाश मिले ही कहां से।

प्रेमलता ने उसी प्रकार शून्य की ओर निहारते हुये उत्तर दिया—हाँ आज कुछ जी ठीक नहीं है। सुबह ही उसने महाराजिन से कह दिया था कि वह भोजन न करेगी। महाराजिन जानती है कि मालकिन आज कल कुछ अजीब सी हो रही हैं। बहुधा वे भोजन नहीं करती; दिन भर काम में ही लगी रहती हैं। इसलिये उसने प्रेमलता के भोजन न करने की ओर विशेष ध्यान न दिया था। पर अब जब उसे शत हुआ कि प्रेमलता की तबीयत खराब है तो उसके अंतर को एक आघात सा लगा, बोली—तो मुझे बताया क्यों नहीं। दिन भर इसी तरह पड़ी रहीं। मैं तो समझती थी कि आप अन्य दिनों की भांति आज भी काम में लगी थीं।

एक विप्राद पूर्ण हंसी अधरों पर लाते हुये प्रेमलता ने कहा—महाराजिन, तुम व्यर्थ ही इतनी चिन्तित हो जाती हो। मेरी तबीयत कुछ इतनी खराब तो थी नहीं। ऐसे ही कुछ भारी सी हो गई थी।



‘तो आप ने कुछ तो खा लिया होता !’ महाराजिन ने फिर कहा ।  
 प्रेमलता ने उत्तर दिया—भूख नहीं थी । कुछ शंतरे थे उन्हीं को  
 खा लिया है । अब ठीक हो जायगी ।

‘पर यदि आप कहें तो चाय बना लाऊँ । लाभ करेगी ।’

यह बात महाराजिन ने ऐसे ढङ्ग से कही कि प्रेमलता उसके आग्रह  
 को टालने की सामर्थ्य जैसे अपने में न पा रही हो । बोली—अच्छी बात  
 है ।

महाराजिन चली गई तो प्रेमलता सोचती रही, यह महाराजिन भी  
 अपने ऊपर गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी लिये हुये है । इधर वह  
 महाराजिन की भाव भंगियों में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन पा रही  
 है । कितनी ही बार उसने महाराजिन के इस सहसा परिवर्तन पर विचार  
 किया परन्तु समझ नहीं सकी । जीवन में कभी-कभी एक परिवर्तन की  
 रेखा खिंच उठती है । परिवर्तन की इस रेखा को चाहे मनुष्य स्वयं न  
 अनुभव करे पर दूसरे अवश्य पहचान लेते हैं । महाराजिन के सम्बंध में  
 भी यही बात है । शायद उसे अपने परिवर्तन का अनुभव नहीं हो रहा है  
 पर देखने वाले उसके इस परिवर्तन पर आश्चर्य अवश्य कर सकते हैं ।

चाय लेकर महाराजिन आ गई तो प्रेमलता को लगा कि जैसे चाय  
 उसने पहले से ही तैयार कर रखी थी । नहीं तो इतनी जल्दी भला कोई  
 कैसे चाय ला सकता था । प्रेमलता ने पूछा—चाय पहले से ही तैयार  
 कर रखी थी क्या महाराजिन तुमने ?

महाराजिन के अधरों पर एक मधुर मुस्कान खेल गई । बोली—क्यों ?  
 ‘इतनी जल्दी—’

बीच में ही महाराजिन ने कहा—जल्दी तो नहीं हुई बहू जी, हाँ  
 आपको चाहे जान ऐसा ही पड़ा हो ।

और वह खुलकर हंसने लगी ।

प्रेमलता चुप रही । चाय बनाते हुए सहसा वह अधिक भावुक हो उठी  
 प्याले से भाप उठ रही थी । उसे देख वह जैसे अपने ही आप कह उठी,

जीवन भी तो ऐसा ही है। कुछ अंतर में जब खौल उठता है तो जैसे अपना अस्तित्व ही भाप बनकर उड़ जाना चाहता है।

महराजिन प्रेमलता की बात ध्यान से सुन रही थी। प्रेमलता कहती गई—हमारे चारों ओर ही तो यह महा शून्य व्याप्त है और इसके बीच हमारा जीवन, इसी प्याले के इस पेय की ही भांति तो क्षणिक है पर फिर भी कितना ताप है छोटे से इस प्याले में।

महराजिन ने मुस्कुरा कर कहा—तो क्या जीवन की इस लघुता के कारण ही वह अपना ताप त्याग दे ?

प्रेमलता मुस्कुरा उठी। क्यों, शायद यह वह स्वयं नहीं जानती। बोली—नहीं; अपना ताप वह त्याग क्यों दे ? यही तो उसका जीवन है।

चाय तैयार हो गई थी। प्रेमलता ने एक घूंट पी प्याला फिर रख दिया। वह कुछ और कहने जा रही थी कि किसी के आने की आहट सुन पड़ी।

महराजिन खड़ी थी। मुंह उसने मोड़कर द्वार की ओर देखा। मणि आई थी।

द्वार से ही उसने कहा—नमस्ते।

‘नमस्ते, आओ।’ प्रेमलता ने उत्तर दिया।

मणि आकर बैठ गई तो महराजिन एक और प्याला लेने के लिये चली गई।

मणि ने पूछा—आज आप उदास सी दिखाई पड़ती हैं।

‘नहीं तो मणि, मैं उदास नहीं हूँ। पर आज जी कुछ अच्छा नहीं था। सो दिन भर ऐसे ही पड़ी रही।’

‘और प्रोफेसर साहब नहीं दिखाई पड़ते।’ मणि ने पूछा।

प्रेमलता ने मणि की ओर आश्चर्य से देखा। मणि कभी उससे निशीथ की बात नहीं पूछती। सो बोली—अभी कालेज से नहीं लौटे।

‘कालेज से नहीं लौटे ! क्यों साढ़े चार तो बज गये। कै बजे लौटते हैं।’

क्या उत्तर दे प्रेमलता !

बोली—आज कल वे देर से लौटते हैं। उन्हें कोई पुस्तक लिखनी है सो कुछ अध्ययन करने के लिये रुक जाते हैं शायद लाइब्रेरी में।

मणि मुस्करा कर रह गई।

मणि ने फिर कहा—जब आपकी तबीयत ठीक नहीं थी, तब उन्हें आज कालेज से जल्द ही चले आना चाहिए था।

मणि प्रेमलता से कुछ पूछ लेना चाहती है यह प्रेमलता को ज्ञात हो गया। उसने बात का विषय बदलते हुए कहा—उन्हें इसका पता भी नहीं था। सुबह मैंने उन्हें बताया ही नहीं।

मणि हँस पड़ी। उसका मधुर हास जैसे प्रेमलता को कटु सा लगा। उसने मुंह दूसरी ओर कर लिया और खिड़की के बाहर खिले हुए फूलों को देखते हुए बोली—देखो मणि यह फूल यहां से कितने सुन्दर लगते हैं परन्तु निकट जाने पर जैसे इनका सौंदर्य इतना आकर्षक नहीं रह जाता।

मणि ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—फूल सी ही तो होती हैं हम नारी भी। दूर से देखने में आकर्षक दिखाई पड़ती हैं पर पास आने पर हमारी यथार्थता प्रगट हो जाती है।

मणि उसे बरवश किसी दूसरी ओर ले जाने का प्रयत्न कर रही है। प्रेमलता ने कुछ उत्तर न दिया तो मणि ने फिर कहा—कभी आपने सोचा है, आपको तो शायद जीवन में पुरुषों का अनुभव अधिक ही होगा। पुरुष कौं भी सदैव दूर के फूल ही सुन्दर लगते हैं।

दूर के फूल ! प्रेमलता को आश्चर्य हो रहा था। आखिर यह आज कहना क्या चाह रही है। वह चुप रही पर उसकी आंखें जैसे मणि के अन्तर में प्रवेश कर कुछ पढ़ने का प्रयत्न कर रही हों।

मणि गम्भीर होकर बोली—प्रेमलता बहिन आखिर तुम यह अनुभव क्यों नहीं करती कि तुम प्रोफेसर के लिए निकट की फूल बन चुकी हो, जिसके सौंदर्य का आकर्षण अब उनके निकट प्राचीन पड़

गया है। उसे वे अपनी वाटिका से निकाल बाहर करना भी नहीं चाहते। पर साथ ही उसकी खिली हुए पंखड़ियों पर प्यार से हाथ फेरना भी नहीं चाहते। दूर के फूल की ओर उनका ध्यान जा चुका है। उसके निकट वे बढ़ रहे हैं।

प्रमलता को लग रहा था जैसे मणि की वाणी में शत-शत विच्छुओं का डंक भरा हो जो उसके सारे अन्तर में विखर कर चुभ गया हो और उन्हीं के दंशन से वह तड़प उठी। मणि की ओर देखते हुए वह बोली—मणि, आज तुम कैसी बातें कर रही हो।

मणि उसी प्रकार गम्भीर बनी रही। बोली—देखिये बात जो सत्य है उस पर पर्दा डालकर चाहे अपने हृदय में उसके अस्तित्व को पल भर के लिए भूल जाय पर संसार आपके इस आत्म-सन्तोष की बात कैसे स्वीकार कर सकता है।

‘तुम्हारा अभिप्राय क्या है मणि !’ इस बार प्रेमलता की वाणी में कम्पन था।

मणि बोली—तुम जानती हो कि प्रोफेसर आजकल एक नये फूल की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

‘नया फूल कौन ?’ प्रेमलता ने पूछा तो लिया परन्तु उसका हृदय कांप रहा था।

मणि ने कहा—वही आई० सी० एस० की पत्नी जो हैं। मैंने कितनी ही बार देखा है कि प्रोफेसर के पास वह मिलने के लिये आई और प्रोफेसर भी नित्य शाम को उसी से मिलने जाते हैं।

प्रेमलता सब सुन शान्त बनी रही। उसका हृदय जैसे चाह रहा था कि वह रोवे। उसने करुणापूर्ण दृष्टि से मणि की ओर देखा।

मणि क्षण भर चुप रही, फिर बोली—तुम्हें इसका पता नहीं है तुम तो सदैव ही अपने संघ के कामों में लगी रहती हो। कभी तुमने प्रोफेसर की ओर शायद ध्यान देने का विचार भी नहीं किया पर मैं कहती हूँ यही तुम्हारी भूल है। पहले प्रोफेसर हमारे यहां बहुधा आया

जाया करते थे। पिता जी से उनकी बड़ी घनिष्टता है, परन्तु इधर वे उनके पास भी नहीं जाते।

प्रेमलता ने अब तक मैं अपने हृदय की व्यथा को समेट लिया था बोली—मणि तुम्हें इस प्रकार उनपर संदेह करने का अधिकार नहीं है; वे मेरे पति हैं उनको मैं अधिक पहचानती हूँ। रही नयना ! वह उनकी सहपाठिनी थी। उसी नाते वह उससे कई बार मिले भी। परन्तु मैं यह विश्वास नहीं करती कि वे नित्य इसी कारण से देर से आते हैं।

मणि अधिक लुब्ध हो उठी आकृति लाल हो गई; जैसे किसी ने गुलाल पोत दी हो। उसने कहा—आप विश्वास न करें इससे तो स्थिति में कोई परिवर्तन होता नहीं। हां, भले ही आप अपने हृदय को समझा लें। अभी उस दिन की ही तो बात है—शायद शुक्रवार था—मैं कालेज के बाद अपनी एक सखी के यहां चली गई थी। वहां से लौट रही थी तो देखा कि प्रोफेसर नयना से बातें करते चले जा रहे हैं। वे तांगे पर थे। मैंने देखा उस समय नयना के मुखमण्डल पर एक प्रकाश था जिसे कोई भी स्त्री पहचान सकती है।

प्रेमलता ने अपने हृदय को जैसे मसल कर कहा—मणि, मैं कहती हूँ तुम फिर भी भूल करती हो।

‘मैं भूल नहीं करती पर हां आपको भूल का अनुभव शायद तब होगा जब सब कुछ समाप्त हो गया होगा।’

सब कुछ समाप्त हो गया होगा ! प्रेमलता ने सोचा जैसे अभी कुछ शेष ही हो। निशीथ उससे दूर-दूर रहता है पति पत्नी होकर भी वे एक दूसरे से कितनी दूर रहते हैं पर यह सब वह मणि से कह तो नहीं सकती। प्रेमलता की वेदना तड़प उठी; हृदय जलने लगा और उसकी आंखों के सम्मुख जैसे धुंआ छा रहा हो।

कुछ कहना ही वह चाह रही थी कि निशीथ ने कमरे में प्रवेश किया, मणि को देखते ही उसने मुस्करा कर कहा—नमस्ते मिस मणि ! आनन्द से हो न ? बहुत दिनों बाद देख रहा हूँ।

मणि ने गम्भीर हो उत्तर दिया—क्यों अभी दो तीन दिन पहले भी तो हम मिले थे ।

निशीथ को स्मरण हो आया । उस दिन वह कालेज से लौट रहा था तो नयना मिल गई । वह जैसे उसकी राह देख रही थी । फिर नयना के कहने से वह उसके यहाँ जाने को राजी हुआ और जब वह जा रहा था तो उसने देखा कि मणि साथ में बहुत सी पुस्तकें लिये घर की ओर जा रही थी । मणि के इस इशारे को वह समझ गया । वह सोच रहा था यह मणि भी अजीब लड़की है । निशीथ उसके पिता के पास जाया करता था; मणि की ओर उसने कभी विशेष ध्यान न दिया परन्तु उसने अनुभव किया कि मणि बराबर उसकी ओर अग्रसर हो रही है । निशीथ के लिये यह स्थिति असहनीय है । वह मणि के यौवन के साथ खेल करना नहीं चाहता । उसने चाहा कि वह उसके यहाँ न जाय पर इससे ही तो कुछ हो नहीं सकता । परन्तु अधिक दिनों तक वह इस स्थिति में न रहा । उस दिन वह मणि के यहाँ गये तो मणि अकेली ही हाल में बैठी थी । उसके पिता कहीं गये थे । माँ अन्दर थीं । मणि ने कहा—बाबू जी कहीं गये हैं, अभी आते ही होंगे ।

निशीथ क्षण भर रुका, फिर कहा—अच्छा तो मैं जा रहा हूँ ।

तभी मणि ने कहा—क्यों, क्या मेरे पास आप क्षण भर नहीं बैठ सकते ?

क्या उत्तर दे निशीथ ? बैठते हुये बोला—ऐसा तो नहीं है । पर प्रोफेसर साहब के पास एक कार्यवश आया था । वे नहीं हैं तो सोचा अभी थोड़ी देर बाद आऊँगा ।

मणि ने उलाहने के रूप में कहा—जाने क्यों आप जैसे मुझसे घृणा करते हैं ऐसी बुरी तो मैं नहीं हूँ ।

निशीथ क्या कहे ? उसने मणि की ओर देखा, उसकी आँखों में वासना का समुद्र सा लहराता उसे दिखाई पड़ा । उसने आँखें नीची कर लीं और फिर बोला—मिस मणि आप जाने कैसी बातें करती हैं ? मैं

आप से घृणा क्यों करूँ ? और फिर मनुष्य को मनुष्य के प्रति घृणा करने का अधिकार ही क्या है ।

‘अधिकार मनुष्य आप ही बना लेता है । पर आप तो जैसे पत्थर से बने रहते हैं ।’

‘आप का अभिप्राय मैं नहीं समझा ।’ निशीथ ने मणि की ओर देखते हुये उत्तर दिया ।

इस बार मणि क्षण भर निशीथ की ओर एक-टक देखती रही जैसे वह अपने सम्पूर्ण सौंदर्य को समेट कर एक आकर्षण पैदा करना चाहती हो जिसमें वह निशीथ को भस्म कर देने के लिये उद्यत हो । बोली—आप क्या मुझे केवल मणि नहीं कह सकते ।

निशीथ के अधरों पर मुस्कान खेल गई । भला यह भी कोई बात है । बोला—दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं है ।

‘तो फिर आपको मेरी बात स्वीकार करने में कोई एतराज तो न होना चाहिए ।’ मणि ने कहा ।

निशीथ ने कोई उत्तर न दिया वह मणि की ओर देख रहा था । वालों की एक लट आकर उसके कंठ के पास टिक गई थी—धनुषाकार, आंखों में जैसे मद छलक रहा था । सफ़ेद नंगी भुजा को उसने मेज पर रख दिया, निशीथ सोच रहा था यह नारी अपने सौंदर्य को साधन बनाना चाहती है, अपने योवन को उन्माद में बहाना चाहती है । मनुष्य कितना मूर्ख होता है । उसे यह सब बड़ा विचित्र सा लग रहा था । सहसा खिलखिल करके वह हंस पड़ा ।

मणि ने पूछा—आप हंस क्यों पड़े ?

निशीथ उसी प्रकार हंसता रहा, फिर उठते हुये बोला—अच्छा मणि—मिस मणि तुम्हें नहीं कह रहा हूँ, अब चलता हूँ ।

कह वह जब चलने लगा तो मणि उठकर उसके सामने आ गई । जैसे कह रही हो तुम मेरी इस प्रकार उपेक्षा करके नहीं जा सकते । उसकी आंखों में एक याचना थी । निशीथ ने पूछा—क्या है मणि !

मणि की जवान खुली; कंठ उसका जैसे अवरुद्ध हो उठा था—तुम क्यों चले जा रहे हो ?

उसकी वाणी में दैन्य था । निशीथ को खिभलाहट आ गई—जाऊँ न तो फिर क्या करूँ ?

‘मेरी इतनी अवहेलना आखिर तुम क्यों करते हो ?’ कह कर उसने निशीथ के दोनों कन्धों को पकड़ कर झुकझोर दिया ।

निशीथ को क्रोध आ गया था, बोला—मणि तुम्हारा मस्तिष्क इस समय ठिकाने पर नहीं है इसलिये मैं कुछ कहना नहीं चाहता ।

‘मेरा मस्तिष्क ठिकाने पर है, मैं होश में हूँ पर मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती ।’ मणि ने आवेश के साथ कहा ।

‘मणि !’ निशीथ ने कठोर स्वर में उत्तर दिया—तुम भूल कर रही हो । अधिक कटुशब्दों का प्रयोग करके मैं तुम्हारा जी नहीं दुखाना चाहता । किन्तु यह बता देना चाहता हूँ कि तुम्हारा यह तरीका मुझे पसन्द नहीं । मैं ऐसी स्त्रियों से घृणा करता हूँ ।

मणि को एक विचित्र प्रकार से देखता हुआ निशीथ बाहर निकल आया और मणि उसी प्रकार खड़ी रही अचल, पत्थर की मूर्ति बनी ।

पलक मारते ही यह सब घटनायें जैसे निशीथ के मस्तिष्क में घूम गईं हों । उसने मुस्कराते हुये उत्तर दिया—हाँ, उस दिन मैंने देखा था आपको । बड़ी किताबें लिये जा रही थीं !

‘हाँ, लाइब्रेरी की थीं । परन्तु आपने तो समझा होगा किसी दूसरे के लिये मैं उन्हें लिये जा रही हूँ ।’ मणि ने कहा ।

निशीथ मुस्करा उठा, बोला—मैं ऐसा क्यों समझता । जानता जो हूँ कि आप बहुत पढ़ती हैं ।

‘तो सोचा होगा उपन्यास कहानियों की पुस्तकें रही होंगी ।’ मणि ने फिर कटाक्ष किया ।

‘यदि यह भी समझता तो आखिर बुरा क्या है ? क्या उपन्यास कहानीकोई साहित्य ही नहीं हैं ? मैं तो समझता हूँ, प्रेमचन्द्र के



उपन्यास उच्चकोटि के साहित्य हैं जिन्हें पढ़कर आप गर्व कर सकती हैं।'

मणि इस बार चुप हो गई पर उसके मुख की मुद्रा से प्रगट था कि वह कुछ और अधिक कहना चाहती है। निशीथ ने फिर प्रश्न किया—कहो, प्रोफेसर साहब का क्या समाचार है! आनन्द से तो हैं।

‘हाँ, ठीक है।’ उदासीनता से मणि ने उत्तर दिया।

निशीथ जैसे अपने आप से कह रहा हो—इतने निकट हम रहते हैं पर आश्चर्य की ही बात है कि एक दूसरे के सम्बन्ध में इतने अज्ञान में रहते हैं। कितने दिन हो गये प्रोफेसर साहब से मिले!

मणि ने कहा—इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? अपने अधिक निकट के लोगों से ही तो हम अपरिचित रहते हैं।

उसने प्रेमलता की ओर देखा तो प्रेमलता को लगा कि वह इस अजीब सी लड़की के सामने से हट जाय पर वह ऐसा कर न सकी।

सहसा मणि ने उठते हुये कहा—अच्छा प्रेमलता बहिन मैं चलती हूँ!

प्रेमलता के पहले ही निशीथ ने कहा—इतनी जल्दी क्या है। आप तो मेरे आते ही चलने को तैयार हो गईं।

मणि ने निशीथ की ओर देखा, फिर बोली—ऐसे ही चली आई थी। फिर देखा प्रेमलता बहिन की तबीयत खराब है, सो बैठ गई। कोई विशेष कार्य नहीं था। अब जाती हूँ।

निशीथ को बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रेमलता की तबीयत खराब है। उसने पूछा—प्रेम, तुम्हारी तबीयत खराब है? तुमने मुझे बताया नहीं।

प्रेमलता के अधरों पर मुस्कान खेल गई, बोली—कोई विशेष बात नहीं। आज ऐसे ही जी भारी था।

‘था? तो अब ठीक है।’

‘हाँ’

मणि चली गई तो प्रेमलता ने निशीथ से कहा—यह लड़की तुम से रुष्ट है क्या, कितनी असभ्यता के साथ बातें कर रही थी।

निशीथ हंस पड़ा, बोला—प्रेम यह तो अपना-अपना स्वभाव है। हम किसी को भी गलत समझ सकते हैं।

‘पर इसकी इतनी कठोर बातों के विपरीत भी तुम किस प्रकार इससे बातें कर रहे थे क्या यह आश्चर्यजनक नहीं था?’

‘आश्चर्य तुम कह सकती हो। पर यदि कोई असभ्य हो जाय तो तो क्या हमारा भी यही कर्तव्य है कि हम उसके साथ उसी प्रकार का बर्ताव करें।’

‘नहीं, मैं यह नहीं कहती पर उसका व्यवहार ही ऐसा था कि किसी को भी क्रोध आ सकता था।’

निशीथ हंसने लगा। प्रेमलता के निकट ही वह बैठ गया। उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर वह बोला—अरे तुम्हें तो ज्वर भी है। किसी डाक्टर को नहीं बुलाया?

‘ऐसी क्या बात थी जो डाक्टर को बुलाती। अब तो ठीक हूँ। हारारत है कल तक ठीक हो जायगी।’ प्रेमलता ने उत्तर दिया।

क्षण भर निशीथ सोचता रहा फिर बोला—प्रेम तुम अपने ज्वर का तनिक भी ध्यान नहीं रखती हो दिन भर दौड़ती रहती हो। कुछ तो अपना ध्यान रखा करो।

प्रेमलता ने जैसे अनजाने में कह दिया—अपना ध्यान तो सभी रखते हैं पर मुझे तुम्हारा ध्यान रखना चाहिये। वह भी तो मैं देखती हूँ कि नहीं कर पा रही हूँ इसीलिये तो कभी-कभी सोचती हूँ कि मैंने व्यर्थ ही यह संव का क्या भ्रंश अपने ऊपर ले लिया। तुम्हें सुख मैं नहीं दे पा रही हूँ। तुम मेरी ओर से क्या सोचते होगे।

निशीथ ने उसको अपनी ओर खींच लिया तो उसने उसकी गोद में लुढ़क अपना मुंह छिपा लिया। प्रेमलता की वेदना आज उभर आई। निशीथ को वह हृदय से प्रेम करती है परन्तु निशीथ ने ही तो उसे अपना समस्त प्रेम नहीं दिया। नहीं वह क्यों उससे दूर-दूर रहने का प्रयत्न करती। उसने सोचा था निशीथ को उसकी आवश्यकता नहीं इसलिये

वह उससे दूर रहने लगी थी परन्तु आज मणि की बातों ने उसके हृदय को व्यथित कर दिया। उसे लग रहा था जैसे निशीथ को उससे कोई-नयना—बरबश छीन रही है।

उसका हृदय क्रन्दन कर उठा तो वह फफक कर रो उठी।

निशीथ उसके सिर पर हाथ फेर रहा था। प्रेमलता को लग रहा था कि वह इस प्रकार पति के अंक में सुरक्षित पड़ी रहे।

निशीथ ने कहा—प्रेम, क्या बात है। इतनी व्यथित तुम क्यों होती हो ?

पर प्रेमलता ने कुछ उत्तर न दिया। कंठ उसका भर आया था।

थोड़ी देर बाद वह उठकर बैठ गई। निशीथ की ओर देखते हुये बोली—मैंने तुम्हारा अपराध किया है। पर तुम मुझे क्यों इस प्रकार अपने जीवन से निकाल रहे हो।

निशीथ को प्रेमलता की बात पर आश्चर्य हुआ उसने कहा—प्रेम, आखिर बात क्या है तुम यह अब क्या कह रही हो ?

प्रेमलता निशीथ की ओर देख रही थी जैसे वह उसकी आँखों में कुछ पढ़ना चाह रही हो। बोली—तुम रोज इतनी देर करके क्यों आते हो ?

‘मुझे लाइब्रेरी में रहना पड़ता है। एक और किताब की तैयारी जो कर रहा हूँ मैं।’ निशीथ ने सहज भाव से उत्तर दिया।

‘तुम नयना के यहाँ रोज नहीं जाते ?’ प्रेमलता ने प्रश्न किया।

नयना। नयना के यहाँ निशीथ रोज नहीं जाता पर घर वह शीघ्र ही आ सकता है। हाँ, आता नहीं। आकर करे ही क्या ? जाने क्यों निशीथ को अपने खाली कमरे में अकेले बैठे-बैठे जैसे एक ऊब सी लगने लगती हैं। बोला - प्रेम तुम्हें यह कैसे संदेह हुआ कि मैं रोज नयना के यहाँ जाता हूँ ?

‘तुम नहीं जाते, बस मैं इतना ही सुनना चाहती हूँ। तुम्हारा मुझे विश्वास है।’

‘मैं रोज नहीं जाता पर यह नहीं कह सकता कि उसके यहाँ गया नहीं। कई बार वह मिल गई और मुझे अपने यहाँ ले गई है। पर इसमें कोई हर्ज मुझे नहीं दिखाई पड़ता। तुम व्यर्थ ही नयना पर संदेह करती हो।’

‘मैं नयना पर संदेह नहीं करती पर जाने क्यों मुझे लग रहा है कि तुम मुझसे दूर होते जा रहे हो।’

‘यह भ्रम है तुम्हारा प्रेम !’ कह कर निशीथ हंसने लगा।

उस दिन प्रेमलता ने निश्चय किया कि वह अब संघ का इतना कार्य नहीं करेगी। निशीथ को प्रेमलता का यह निश्चय सुन प्रसन्नता ही हुई। वह पहले से ही जानता था कि किसी दिन प्रेमलता स्वयं संघ के कार्यों से ऊब जायगी और तब उसमें जो परिवर्तन होगा उससे वह और भी अधिक उसकी ओर आकर्षित होगी।

उसने मुस्करा कर प्रेमलता के गाल पर धीरे से अपनी उँगलियाँ रखते हुये बोला—चलो, नयना के कारण तुम्हें संघ के कामों से मुक्ति तो मिली।

मुस्करा कर प्रेमलता रह गई। उस दिन प्रेमलता और निशीथ ने रात में साथ ही साथ भोजन किया। निशीथ अपने कमरे में नहीं गया। प्रेमलता के पास ही आकर वह बैठ गया तो प्रेमलता ने कहा—मैंने संघ के कार्यों से अवकाश लेने का निश्चय कर लिया पर तुम बाहर के कमरे में रहने से कब अवकाश ग्रहण करोगे।

निशीथ हंस पड़ा। बोला—तुम्हारा मतलब क्या ?

‘तुम मुझसे दूर न रहो, नहीं.....’

‘ओ हो.....हो.....’ कर वह हंस पड़ा, बोला—नहीं, नहीं, अब मैं तुम्हारे कमरे में ही रहूँगा। इस कमरे को हम लोग ‘स्लीपिंग रूम’ बना लेंगे।

प्रेमलता हंस पड़ी।

और जब प्रेमलता सो रही थी तो निशीथ सोच रहा था क्या प्रेमलता को इतने दिन तक समझने में उमने भूल की थी। प्रेमलता के मस्तक पर रेखायें खिंची हुई थीं जैसे वह सोचते-सोचते सो गई हो कि यह उनकी पराजय थी या विजय। निशीथ उसके उस सुप्त सौंदर्य को देख रहा था। कितनी सुन्दर लगती हैं यह प्रेमलता ! तभी उसे ध्यान आ गई नयना। नयना की ओर अनजाने में ही वह बढ़ रहा था ! किन्तु .....नहीं ..... नयना और उममें बहुत अन्तर है। प्रेमलता उसे इतनी आकर्षक प्रतीत हो रही थी जैसे उसने उसे विवाह के पश्चात् प्रथम रात्रि में अनुभव किया था। उसकी गर्म साँस ऊपर उठकर निशीथ के कपोलों में टकरा कर उसके शरीर में रोमांच उत्पन्न कर रही थी। कितनी सुख की नींद में इस समय प्रेमलता सो रही है जैसे उसे वर्षों से सोने का अवसर न मिला हो। उसने झुक कर उसके अधरों को चूम लिया।

प्रेमलता ने करवट ली पर नींद उसकी न खुली।

वह उसी प्रकार पत्नी के सुप्त सौंदर्य को देखता हुआ, परखता हुआ बैठा रहा। उसे आज जैसे नींद ही न आ रही हो। घड़ी ने टन-टन करके बारह बजाये। आवाज सुन प्रेमलता की आंखें खुल गईं। निशीथ को बैठे देखकर उसने पूछा—अरे तुम बैठे हो ? सोये नहीं क्या ?

अबोध बालक की भांति बिना कुछ उत्तर दिये वह लेट गया तो उसे अंक में भर कर प्रेमलता सो गई।



[ १५ ]

प्रेमलता ने संघ का जाना छोड़ दिया है। निशीथ भी प्रसन्न रहने लगा है। नयना से उसकी भेंट इधर बहुत दिनों से नहीं हुई है और न वह चाहता ही है कि प्रेमलता के निकट जाय। अभी उस दिन नयना निशीथ को मिली थी। निशीथ उसकी दृष्टि बचा कर चला जाना

चाहता था परन्तु नयना ने उसे देख लिया और उसे बुला कर कहा—निशीथ आज कल तुम न जाने कहाँ रहते हो, दिखाई नहीं पड़ते ।

निशीथ ने मुस्करा कर कहा था—नयना अट्रयट ने हम दोनों को बहुत दूर-दूर कर दिया तो क्या हमारा कर्तव्य यह नहीं है कि हम फिर एक बार निकट आकर अपने दाम्पत्य जीवन में विषाद उत्पन्न न करें ।

नयना को निशीथ की बात कुछ अजीब सी जान पड़ी । वह उसकी ओर आश्चर्य के साथ देखने लगी तो निशीथ ने फिर कहा—नयना, मैंने बहुत सोचा है । तुम्हारे वैवाहिक जीवन में जो एक अभाव है उससे मैं परिचित हूँ । जानता हूँ कि यदि हम और तुम एक होते तो अधिक अच्छा होता, परन्तु यह हो नहीं सका इसलिए अच्छा अब यह है कि हम जो एक कच्चा धागा था उसके टूट जाने पर फिर उसे जोड़ने का प्रयत्न न करें ।

नयना की वाणी खुली, बोली—निशीथ तुम हमारे सम्बन्ध को कच्चा धागा कहते हो ।

‘कच्चा धागा तो वह था ही ।’ निशीथ ने उत्तर दिया ।

‘कच्चा धागा उसे तुम कह सकते हो परन्तु मेरे निकट तो निशीथ, जीवन के वे क्षण ही मूल्यवान हैं ।’

‘कभी-कभी जीवन में हमारे निकट उन क्षणों का भी बहुत मूल्य प्रतीत होता है जिन्हें हम प्रमाद में नष्टकर देते हैं । परन्तु यही तो सब कुछ जीवन में नहीं होता, नयना ।’

नयना ने कोई उत्तर नहीं दिया पर उसे आश्चर्य अवश्य हो रहा था । यह निशीथ क्या सोच रहा है यह वह समझती है परन्तु ऐसा सोचने की निशीथ को आवश्यकता क्यों पड़ी ।

नयना उसके निकट आ गई थी । उसका उस समय का आकर्षण निशीथ को आमंत्रित करता सा जान पड़ा । उसने कहा—नयना, अब तुम जाओ मुझे एक कार्य से शीघ्र ही जाना है ।

नयना का हृदय 'विथा' से भर सा उठा तो उसने कहा—निशीथ, तू म इतने कठोर क्यों हो रहे हो ?

'कठोर नहीं हो रहा हूँ पर तू म जाओ ।' निशीथ ने विचलित से हो कर कहा ।

क्षण भर वह चुप रही जैसे निशीथ को समझने का प्रयत्न कर रही हो, फिर बोली—अच्छा !

नयना चली गई तो निशीथ बहुत देर तक अपने मनमें सोचता रहा ।

उस दिन की घटना का उल्लेख उसने प्रेमलता से नहीं किया । आज छुट्टी थी इसलिये खाना विलम्ब से बन रहा था । निशीथ हाल में बैठा हुआ कोई पुस्तक पढ़ रहा था, तभी आ गई प्रेमलता । किताब निशीथ के हाथ से छीनकर उसने मेज पर रख दी और बोली—दिन रात तो तू म अपनी पुस्तकों में उलझे रहते हो आखिर बात तू मसे किस समय की जाय ।

निशीथ हंसने लगा । बोला—तुम्हें तो जय बात करना हो, कर सकती हो ।

प्रेमलता ने हंसते हुये पति की आंखें बन्द कर लीं; बोली—बताओ तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता है ।

'हाँ' निशीथ ने उत्तर दिया ।

'क्या दिखाई पड़ता है ।' प्रेमलता ने हंसते हुये प्रश्न किया ।

'तू म सोचो ?'

प्रेमलता को परिहास सूझा । पल भर वह पति की आंखें बंद किये खड़ी रही फिर अपने हाथ खींचते हुये उसने हंस कर कहा—नयना ।

निशीथ अप्रतिभ हो गया । नयना की बात आते जाने क्यों वह अप्रतिभ हो उठता है । वह गम्भीर हो उठा परिहास में लिये गये इस नाम से सम्बद्ध घटनायें उसकी आंखों के सामने नाचती रहीं फिर उसने कहा—प्रेम, जीवन एक गति है । हम निरन्तर एक लक्ष्य की

और बढ़ते रहते हैं। एक क्षण में हम फिर उस स्थान पर वापस भी तो नहीं आ सकते जहाँ से हम जीवन का प्रारम्भ करते हैं। उसी गति में नयना आई थी, पीछे छूट गई। अब एक क्षण में उस स्थान पर हम फिर तो नहीं पहुँच सकते।

प्रेमलता ने पति की ओर देखा। क्या नयना का नाम लेकर उसने पति के हृदय को चोट पहुँचाई है। बोली—मैंने तो परिहास में ही कहा था। तुम्हें दुःख हो रहा है।

‘दुःख मुझे नहीं हो रहा है प्रेम, जीवन में अपने लक्ष्य को पहुँचने का केवल एक ही तरीका है और वह यह कि हम आगे को विचार लें। जब तक कोई बात तुम्हारे हृदय में है उससे संसार का कुछ बनता बिगड़ता नहीं पर एक बार वह तुम्हारे हाथ से निकल गई तो फिर तुम्हें उसका परिणाम उठाना ही होगा। हम अतीत की वर्षों लम्बी अवधि को निरन्तर देखते रहते हैं। परन्तु कितनी दूर तक भविष्य को देख सकते हैं यही हमारी ज्ञान शक्ति का परिचायक है।’

प्रेमलता ने विरोध नहीं किया।

निशीथ फिर कहता गया—केवल दो ही चीज़ हमारे जीवन में होती हैं सत् और असत् ! दो ही है—ठीक या गलत ! पाप या पुण्य ! दोनों का पृथक् करने वाली रेखायें स्पष्ट होती हैं। मध्य का कोई मार्ग नहीं है। तुम्हें दो में एक ही मार्ग ग्रहण करना पड़ता है। पाप की ओर, असत् की ओर तुमने अपने पग बढ़ाये तो फिर न जाने कितनी बातें अपने आप तुम्हारे सामने आ जाती हैं—छल, प्रवंचना, दुराव, मिथ्या, बहाना,—जाने कितनी भयंकर बातें। तुम उन्हें सहन नहीं कर पाती हो। एक बार सम्मान जो दृष्टि से गिर गया तो फिर उसे तुम उठाकर उसी स्थान पर नहीं रख सकतीं।

क्षण भर चुप रह कर निशीथ फिर कहने लगा—नयना ने स्वयं ही मेरे जीवन में एक सम्मान प्राप्त किया था और स्वयं ही उसने उसे खो दिया। अब वह स्थान वह प्राप्त नहीं कर सकती।



प्रेमलता की हंसी ने वातावरण की गम्भीरता को भङ्ग कर दिया। बोली—अरे तुमने इतनी देर जो यह दर्शनशास्त्र की विवेचना की वह केवल इसीलिये।

निशीथ मुस्कराया।

प्रेमलता कुछ कहने जा रही थी कि नौकर ने आकर कहा—एक स्त्री आई है। आपसे मिलना चाहती है।

‘मुझसे?’ प्रेमलता ने आश्चर्य से पूछा।

‘हाँ।’

‘कौन है?’

कोई गरीब स्त्री है। बड़ी दुःखी सी। नौकर ने उत्तर दिया।

प्रेमलता उठकर बाहर आई तो आगन्तुका को देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मौसी थीं। कई वर्षों पश्चात् आज वह मौसी को देख रही थीं।

उनमें बहुत परिवर्तन हो गया था। चेहरा सूखकर पीला पड़ गया था। प्रतीत होता था जैसे किसी भयङ्कर व्यथा की छाया उन पर पड़ रही हो। शरीर पर एक साधारण सी धोती थी जो अपना दैन्य स्वयं प्रकट कर रही थी।

क्षण भर प्रेमलता मौसी की ओर देखती रही; आश्चर्य से उसके मुंह से निकल गया—मौसी तुम ?

मूर्ति हिली डुली नहीं। उसकी आंखों से बराबर आंसू की बूंदें ढुलक कर सूखे कपोलों पर गिरने लगीं। प्रेमलता उन्हें लेकर भीतर चली गई।

जब मौसी शान्त हुई, और व्यथा का भार उनका कुछ कम हुआ तो उन्होंने अपनी कहानी सुनाई। प्रेमलता के यहाँ से जाने के पश्चात् वे अपने भाई के साथ रहती थीं। सोचा था उनका जीवन शांति से कट जायगा पर न कट सका।

प्रेमलता ने पूछा—पर मौसी तुम हमारे पास से क्यों चली गईं ?

मौसी कुछ देर चुप रही; कुछ सोचती रही, फिर बोली—प्रेम, उस कारण को आज तक मैंने अपने हृदय में ही छिपा कर रखा था पर आज तुमसे कुछ न छिपाऊँगी। आज जो कुछ है वह सभी तुम्हारे सम्मुख रख दूँगी। तभी शायद मुझे शांति प्राप्त हो सके। जब तुम्हारे पिता बीमारी से अच्छे हो गये तो उन्होंने एक दिन मुझसे वह प्रस्ताव किया जिसकी आशा मैं नहीं करती थी। उनके एकाकी जीवन से मुझे सहानुभूति थी; उनके प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा थी इसलिए मैं नहीं चाहती थी कि उनका जीवन किसी प्रकार से क्लुप्त हो। उन्हें बचाने के उद्देश्य से ही मैं तुम्हारा घर छोड़कर चली गई। परन्तु अपने को बचा न सकी मैं। एक आग जो मेरे हृदय में सुलग रही थी वह भभक कर जल उठी। भाई साहब के यहाँ जाने पर भी मुझे शांति न मिली। कितनी ही बार मैंने सोचा कि मैं फिर तुम्हारे पास लौट चलूँ पर ऐसा न कर सकी और फिर उसका वही परिणाम हुआ जिसकी सम्भावना थी। मैं पतन की ओर अग्रसर होने लगी।

‘भाई के घर में रहना मैंने उचित न समझा; इसलिये वहाँ से भी चली आई। भाई साहब को शायद पहले ही कुछ संदेह हो गया था इस लिये उन्होंने भी मेरी कोई खोज खबर नहीं ली। भटकती-भटकती आज मैं यहाँ आ पहुँची हूँ। सोचा था यहाँ से भी मैं चली जाऊँगी पर तुम्हें देखने का मोह मैं एक बार संवरण न कर सकी। तुम्हारे विवाह में भी मैं नहीं आई थी ‘सो सोचा मिलकर अपने पापों को तुम्हारे सामने कह दूँ। मुझे आशा थी कि तुम मुझे दुनियाँ की भांति पतित कह कर तिरस्कृत न करोगी। अब मुझे अपने जीवन का मोह नहीं रह गया।’

मौसी की बात प्रेमलता ध्यान से सुनती रही फिर बोली—मौसी तुमने मेरे पास आकर अच्छा ही किया। अब तुम्हें कहीं और भटकने की आवश्यकता नहीं है। यहीं रहो तुम्हारा सब प्रबंध मैं कर दूँगी।

मौसी क्षण भर तक प्रेमलता की ओर देखती रहीं फिर बोली—नहीं प्रेम तुम्हारे पास रह कर मैं तुम्हें अपवाद का कारण नहीं बना सकती । नारी कितनी निर्बल है ।

प्रेमलता कुछ सोच रही थी बोली—मौसी, यह एक तुम्हारी ही कहानी नहीं है कितनी ही हमारी बहिने हैं जिनको इसी प्रकार की परिस्थिति का शिकार होना पड़ता है । और फिर उनके लिये समाज में कोई स्थान नहीं रह जाता ।

मौसी की आखों से आँसू बहने लगे । प्रेमलता ने कहा—ऐसी ही स्त्रियों की सहायता के लिये हमने जागृत-नारी-संघ की स्थापना की है । आज कई महीने से मैं उससे पृथक् रहने लगी हूँ पर देखती हूँ यह मेरी भूल थी । अपनी जाति के लिए हमें कुछ त्याग करना ही होगा ।

उस दिन प्रेमलता ने कांति से मिलकर मौसी का प्रबंध जागृत-नारी-संघ में कर दिया । जब से प्रेमलता ने संघ में जाना बन्द कर दिया था तब से वह एक प्रकार से शिथिल हो गया था । कांति ने कई बार प्रेमलता से संघ में आने के लिए कहा पर वह बराबर टाल जाती थी । मौसी पर संघ की सारी जिम्मेदारी रख दी गई ।

संघ में अनाथ स्त्रियों के लिए जो प्रबन्ध था वह ठीक नहीं था । मौसी ने सारा प्रबंध अपने हाथ में ले लिया । संघ के काम में वे पूर्ण गति के साथ लग गई । संघ की नई प्रबन्धिका जानकी देवीसे शीघ्र ही सभी स्त्रियाँ परिचित हो गईं ।

जानकी ने अपने जीवन में एक परिवर्तन का अनुभव किया । अब वे प्रसन्न रहती हैं । कभी-कभी वह अपनी विचार-धारा का विश्लेषण करने बैठ जाती हैं परन्तु कुछ समझ नहीं पातीं । जीवन की दार्शनिकता उसके निकट अपना एक विशेष अर्थ रखती है । उसने अब अनुभव किया है कि जीवन में सबसे अधिक सुन्दर वस्तु मैत्री के आनन्द से परिप्लावित आखें होती हैं । अपने जीवन के इन वर्षों में उसे इन आखों का दर्शन नहीं हो पाया था । जो संसार उसे नहीं दे सका वही आज वह

संसार को देना चाह रही हैं। संघ में वह हर एक से हंस कर बोलती हैं। देखने वाले समझते हैं जैसे जानकी के जीवन में कहीं कोई विषाद नहीं है। पर स्वयं जानकी जब दिन भरके कार्य पश्चात् अपने कमरेमें अकेली लेटती है तो उसका अंतर रोता रहता है। बीती हुई घटनायें बार-बार आकर उसकी आँखों के सम्मुख छा जाती हैं। वह संघ की अन्य स्त्रियों के उदास चेहरे को देखती है तो सोचा करती है कि अपने अंतर की वेदना को इस प्रकार चेहरे पर प्रगट रखकर क्या वे अपनी पीड़ा को कम कर पाती है। और यह कुछ बच्चे भी हैं संघ में। कितनी वेदना है इन अबोध बच्चों के जीवन में परन्तु सदैव ही वे प्रसन्न रहते हैं। व्यथाकी काली रेखायें उनके मुखमण्डल पर नहीं दिखाई पड़तीं। शायद शैशव के साथ वे कुछ और भी गवाँ देंगे। अभी उन्हें अपनी वेदनाओं की ओर दृष्टि पात करने का समय नहीं। दुःख तो शैशव और वयस्क सभी को एक सा होता है। पीड़ा वे बालक भी अनुभव करते हैं। इन बालकों के पास हमसे अधिक आश्रित होता क्या है—आशा ? नहीं विश्वास ?

पर नहीं आशा और विश्वास ? दोनों एक ही तो हैं—आशा और विश्वास ! विश्वास और आशा। आशा में विश्वास होता है और विश्वास में आशा है।

तो क्या बालक की आशा असीम होती है ?

क्या उसका विश्वास अटूट होता है ?

और जानकी चाहती है जीवन में वह शैशव वाला विश्वास और आशा प्राप्त कर सके।

## [ १६ ]

गर्मी की लम्बी लुट्टियाँ हो गई थी। निशीथ का अधिकांश समय अपनी पुस्तक की तैयारी में बीत रहा था। शाम को वह टहलने निकल जाता। बहुधा प्रेमलता भी उसके साथ रहती। उस दिन निशीथ घूमने

जा रहा था तो प्रेमलता ने कहा—मुझे आज तनिक मौसी के पास जाना है। तुम टहलने किधर जाओगे।

‘मैं उधर जाने की नहीं सोच रहा था। पर कहो तो उधर ही चलूं।’

‘नहीं ऐसी आवश्यकता नहीं। मैं अकेली चली जाऊँगी।’

निशीथ ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह और प्रेमलता साथ ही साथ बंगले से बाहर निकले। निशीथ को शहर के बाहर घूमना अधिक पसन्द पड़ता है इसलिए जब वह चौराहे पर आये तो क्षण भर के लिए रुक गए। निशीथ ने कहा—देखो प्रेम, यहां से हमारा रास्ता पृथक-पृथक हो जाता है। ऐसा ही मनुष्य के जीवन में भी तो होता है। जब हमारे लक्ष्य भिन्न-भिन्न होते हैं तो एक स्थान पर आकर हमें पृथक होना पड़ता है।

‘हां और इस चौराहे की भांति वहां पर भी दोनों मार्ग मिलकर एक विस्तृत स्थान बना देते हैं।’ प्रेमलता ने कहा।

निशीथ मुस्कराया और फिर एक ओर को चल पड़ा। प्रेमलता खड़ी कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही, फिर संघ की ओर चल पड़ी।

निशीथ घर लौटा; तब तक प्रेमलता नहीं लौटी थी। वह कमरे में जाकर बैठ गया और प्रेमलता के आने की प्रतीक्षा करने लगा। इधर बहुत दिनों से उसने महाराजिन को नहीं देखा था। वह घर में बराबर रहता है पर महाराजिन कभी उसके सामने नहीं आती। पहाड़ी नौकर ही उसका सारा काम करता है। सहसा निशीथ को जैसे कुछ ध्यान आ गया। उसने नौकरसे महाराजिन को बुला लाने को कहा।

महाराजिन आकर उसके सामने अपराधी की भांति सिर झुका कर खड़ी हो गईं। निशीथ ने देखा उसके चेहरे पर उदासी स्पष्ट झलक रही है। जान पड़ता है जैसे उसे बड़ी व्यथा हो रही हो और वह उसके सामने से भाग जाना चाहती हो।

निशीथ क्षण भर उसे देखता रहा, फिर बोला—बड़ी, तुम उदास हो, क्यों ?

महराजिन का सारा शरीर काँप उठा और निशीथ ने देखा जैसे उसकी वेदना उसकी आँखों से आ बसी हो। वह चुप रही तो निशीथ ने फिर कहा—बड़ी, तुम्हें हमारे यहाँ कष्ट है क्या ?

उसकी वाणी खुली—आपके यहाँ मुझे कष्ट किस बात का हो सकता है ?

‘फिर तुम इस प्रकार उदास क्यों हो ?’

‘कुछ नहीं ? योहीं ?’ महराजिन ने कहा।

निशीथ उसकी ओर गम्भीर दृष्टि से देख रहा था जैसे वह उसकी व्यथा का कारण पढ़ने का प्रयत्न कर रहा हो।

तभी प्रेमलता ने कमरे में प्रवेश किया। महराजिन ने सशंक दृष्टि से उसकी ओर देखा और फिर धीरे-धीरे कमरे के बाहर चली गई। प्रेमलता उसकी ओर एकटक देखती रही।

महराजिन के चले जाने पर प्रेमलता बैठ गई। उसके मस्तिष्क में इस समय विचारों का द्वन्द्व चल रहा था। मौसी ने उसे बताया था कि महराजिन गर्भवती है और उसके प्रसव का समय बहुत निकट है। मौसी बहुधा प्रेमलता के यहाँ आती है। महराजिन ने अपनी सारी स्थिति उनसे कह दी थी। मौसी ने उसे सांत्वना दी, कहा—वे उसका प्रबन्ध संभ में कर देंगी। इसीलिये उन्होंने प्रेमलता को आज अपने यहाँ बुलाया था। प्रेमलता को पहले तो मौसी की बात सुनकर आश्चर्य हुआ था। महराजिन इतने दिन से तो उसके यहाँ रह रही है परन्तु कभी प्रेमलता को उस पर संदेह नहीं हुआ।

किन्तु... यह बच्चा हो किसका सकता है ! महराजिन घर से बाहर कभी जाती नहीं। उसका अपना कोई है नहीं, जिसके पास वह जाय। फिर यह बच्चा किसका हो सकता है ! सहसा उसके मस्तिष्क में चन्द घटनायें जैसे घूम गईं। निशीथ का तो नहीं है ! कई बार उसने महराजिन को निशीथ के साथ अकेले देखा है ? उसे पिछली घटना याद आ गई। एक बार उसने महराजिन को निकालने का प्रस्ताव किया

था तो निशीथ ने इसका विरोध किया था ! अवश्य ही यह बच्चा निशीथ का है ।

प्रेमलता ने निशीथ की ओर देखा; वह गम्भीर बना बैठा था । प्रेमलता उसके प्रति घृणा के भाव से भर गई । निशीथ पर वह कितना विश्वास करती है और यह उसके विश्वास का ही परिणाम है कि निशीथ यह सब कर सका ।

निशीथ ने प्रेमलता को अपनी ओर देखते देख कर पूछा—क्या सोच रही हो ?

‘कुछ नहीं ।’ प्रेमलता ने उत्तर दिया ।

‘मौसी के यहाँ हो आई ?’

‘हां ।’

‘कैसी हैं ?’

‘अच्छी है ।’

‘संघ का कार्य कैसा चल रहा है ।’

‘अच्छा ही ।’

निशीथ ने देखा प्रेमलता जैसे बात करना न चाह रही हो; जैसे कुछ उसके हृदय को मथ रहा हो । क्षण भर उसे देखता रहा फिर बोला—प्रेम, कोई बात है क्या ?

‘नहीं ।’

फिर क्षण भर रुक कर उसने पूछा—महाराजिन क्यों आई थी यहां ।

‘मैंने बुलाया था ।’

‘क्यों ?’

‘सोचा था यदि तुम्हें आने में देर हो तो चाय बनाने को कह दूँ ।’ निशीथ ने कहा, पर प्रेमलता को स्पष्ट जान पड़ रहा था कि वह झूठ बोल रहा है ।

पति के इस मिथ्या-भाषण से प्रेमलता को दुःख हुआ; पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया । क्षण भर तक वह निशीथ की ओर देखती रही जैसे वह कुछ कहने का निर्णय कर रही हो, फिर बोली—यह महाराजिन

अब पहले सा काम नहीं करती । इसे मैं कल से जवाब दे दूंगी । इससे मैं मुक्ति चाहती हूँ ।

‘मुक्ति चाहती हो ?’ निशीथ ने मुस्करा कर प्रश्न किया ।

‘हां, मुक्ति चाहती हूँ । जितनी ही शीघ्र वह हमारे घर से दूर हो जाय उतना ही अच्छा ।’

‘इस समय वह योंही दुःखी है ।’ निशीथ ने कहा—‘क्या इस समय उसे नौकरी से निकाल देना अन्याय न होगा ।’

‘तुम जब कभी मैं उसे जवाब देने को कहती हूँ तो विरोध करते हो । तुम्हारा इस तरह उसके लिये सिफारिश करना मुझे पसन्द नहीं ।’

निशीथ ने कहा—‘मैं उसकी सिफारिश नहीं करता । तुम घर की मालकिन हो । यह प्रबन्ध भी तुम्हारे हाथ है, परन्तु क्या यह ठीक है ? किसी को इस प्रकार जवाब देना उचित नहीं कहा जा सकता ।’

‘क्यों उचित नहीं कहा जा सकता ?’ प्रेमलता ने रोष के साथ कहा ।

‘आखिर वह जायगी कहाँ ? यदि उसे जवाब ही देना है तो उसे पहले से कह दो वह कहीं दूसरी जगह काम खोज ले ।’

‘दूसरी जगह तो वह काम कर चुकी ।’ प्रेमलता ने व्यंग किया ।

‘तो फिर उसे हमें अपने यहाँ रखना ही पड़ेगा क्योंकि उसको इस प्रकार बेकार करने की जिम्मेदारी भी तो हमारी ही है ।’

यह बात निशीथ ने बड़े साधारणरूप से कही परन्तु प्रेमलता को जान पड़ा जैसे निशीथ कह रहा हो कि वह उसके लिए जिम्मेदार है । उठते हुए उसने कहा—‘हम नहीं, पर तुम अवश्य जिम्मेदार हो ।’

और वह कमरे से बाहर चली गई ।

निशीथ उसी प्रकार बैठा रहा । प्रेमलता की इस बात का अभिप्राय क्या था ? वह कहती है महाराजिन को इस प्रकार बेकार बनाने की जिम्मेदारी हम दोनों पर नहीं बल्कि अकेले मुझ पर है । पर यह प्रेमलता ऐसा



समझती क्यों है। महाराजिन को काम करने के लिए अयोग्य मैंने कैसे किया ? वह बड़ी देर तक सोचता रहा।

सहसा उसे किसी के आने की आहट मिली। देखा तो दरवाजे पर महाराजिन खड़ी थी। उसकी आंखों से आंसू गिर रहे थे। वह कुछ कहने ही जा रही थी कि प्रेमलता ने प्रवेश किया। क्रोध से उसकी आंखें जल रही थीं। उसने महाराजिन से कहा—‘तुम्हें यहाँ आने की क्या जरूरत थी ?’

महाराजिन कहणा भरी दृष्टि से एक बार प्रेमलता की ओर देखने लगी।

निशीथ को यह सब बहुत अजीब सा लगा। उसने पूछा—‘क्या बात है ?’

प्रेमलता ने उसी प्रकार क्रोध से उत्तर दिया—‘मैंने इसे इसी समय से जवाब दे दिया। अब यह जाय कहीं और अपना ठिकाना खोजे !’

‘इस समय ?’ निशीथ ने प्रश्न किया।

‘हां ! मैं इसे एक क्षण भी इस घर में नहीं देखना चाहती।’

‘पर आखिर इस समय यह जायगी कहां ?’

‘तुम्हें इसकी इतनी चिन्ता क्यों रहती है ?’

‘इसलिए कि इसके कोई नहीं है। हमें इतनी तो मनुष्यता रखनी ही होगी।’

‘पर मैं इसे अपने घर में रखना नहीं चाहती।’

‘तो रहने दो। सुबह वह कहीं और ठिकाना खोज लेगी।’

महाराजिन की वेदना का बाँध टूट गया। वह फफक कर रो उठी।

निशीथ को बड़ी दया लगी पर प्रेमलता का विरोध करके उसे महाराजिन को घर में रखने की शक्ति नहीं थी।

महाराजिन ने कहा—‘बाबू जी आप चिन्ता न करें; मैं जा रही हूँ। भगवान कहीं न कहीं ठिकाना लगा ही देंगे।’

निशीथ ने कोई उत्तर न दिया।

महाराजिन धीरे-धीरे बाहर चली गई। निशीथ उसकी ओर देखता रहा, जब तक वह आंखों के सामने से दूर नहीं छिप गई।

बँगले के बाहर अंधकार फैल रहा था। निशीथ ने प्रेमलता की ओर देखा; बोला—प्रेम, हमने यह कार्य उचित नहीं किया ?

‘इससे उसका सुधार होगा। दण्ड मिलना तो आवश्यक होता है।’

निशीथ पलभर सोचता रहा, फिर बोला—प्रेम, एक भूल से हम दूसरी भूल को नहीं मिटा सकते।

प्रेमलता ने हंसने का प्रयत्न किया—जब एक कांटे से हम दूसरे कांटे को निकाल सकते हैं तब फिर एक भूल से दूसरी भूल को भी मिटाया जा सकता है।

‘यही बात तो नहीं है प्रेम ? जीवन, में मान लो, एक व्यक्ति ने कोई गलती की तो उसे दण्ड देकर या उसकी उपेक्षा करके हम दूसरी गलती करते हैं। इससे उसका सुधार तो नहीं होता, हाँ, संसार में भूलों और पापों की मात्रा अवश्य बढ़ती जाती है।’ निशीथ ने कहा।

‘तो क्या तुम्हारी राय में संसार से दण्ड की प्रथा ही उठ जानी चाहिए।’

‘अवश्य, तुम अपने शरीर को देखो। नित्य ही तुम इसे साफ़ करने का प्रयत्न करती हो, पर क्या यह कभी साफ़ हो सकता है। सदैव ही कलुष उससे लिपटता है और हम उसे साफ़ करने का प्रयत्न करते रहते हैं।’

‘और यदि न करें तो एक दिन हमारा शरीर कलुष का घर हो जाय।’

‘यही तो हमारी भूल है। ईश्वर का प्रबन्ध सदैव परिस्थितियों के अनुसार होता है। यदि हम अपने शरीर से कलुष को दूर न करते रहें तो भी उसकी मात्रा असीम नहीं हो सकती।’

प्रेमलता पति के इस तर्क पर हँस पड़ी। पर निशीथ उसी प्रकार गम्भीर बना रहा। उसने कहा—समाज भी हमारे शरीर की ही भांति

है। इसे जितना ही कलुष से रहित करने का हम प्रयत्न करते हैं उतना ही कलुषित यह होता जाता है। एक व्यक्ति पाप करता है। उसके पाप के लिए उसे हम दण्ड देते हैं पर इससे समाज का कलुष तो दूर होता नहीं; हाँ, हम उसमें अपने कार्यों द्वारा हम और भी वृद्धि करते हैं।

प्रेमलता हंसने लगी, बोली—तुम्हारे तर्क भी अजीब होते हैं। कोई पाप करे और उसे दंड न दिया जाय तो उसको पाप करने में प्रोत्साहन न मिलेगा क्या ?

‘प्रोत्साहन हम दंड देकर देते हैं। एक व्यक्ति चोरी करता है, उसे दंड देकर हम जेल में ठूस देते हैं; परिणाम यह होता है कि वह और भी बुराईयाँ सीख कर जेल से निकलता है। उसे पश्चाताप करने का अवसर नहीं मिलता। इसीलिए वह अपना सुधार नहीं कर पाता।’

‘तो क्या तुम्हारा मत यह है कि मनुष्य का सुधार पश्चाताप द्वारा ही होता है।’

‘हाँ, मनुष्य पश्चाताप द्वारा ही अपनी आत्मशुद्धि करता है।’

‘पर जब उसे किसी दंड का भय नहीं है, तो फिर वह पश्चाताप करे क्यों ?’

‘यह बात नहीं है। मनुष्य का हृदय सदैव शुद्ध होता है। वह पाप से डरता है। इसलिये कभी न कभी उसे पश्चाताप अवश्य होता है। यदि हम पापी के साथ सहानुभूति प्रकट करें तो उसे अपने पापों का ज्ञान अधिक शीघ्र हो जाता है और वह आत्मशुद्धि के लिए प्रयत्न करता है।’

‘परन्तु तुम्हारी यह बात मेरी समझ में नहीं आती।’ प्रेमलता ने कहा।

‘हम लोग ऐसे संसार और समाज में रहते हैं जो पाप का नाश पाप द्वारा करना चाहता है। इसलिए हमें यह बात समझ में न आना स्वाभाविक है। परन्तु ईश्वर की सृष्टि में यह नियम नहीं है। मनुष्य के पापों का दण्ड मनुष्य नहीं स्वयं उसका हृदय देता है। यही ईश्वर की

सृष्टि का नियम है। इसलिए हमें तो केवल पापी से सहानुभूति ही करनी चाहिए।'।

इस बार प्रेमलता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह निशीथ की बातों पर विचार करती रही। ठीक ही तो निशीथ कहता है। हम एक पाप द्वारा दूसरे पाप को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं पर इससे पाप की वृद्धि ही होती है। महाराजिन को उसके पाप का दण्ड दिया गया पर इससे उसके सुधार की जगह पाप की वृद्धि हो सकती है। यदि उसे कहीं आश्रय न मिला तो सम्भव है उसे अपने जीवन की रक्षा के लिए और अधिक पाप करना पड़े। तो उसके पाप का उत्तरदायित्व उसी पर तो होगा।

सम्भव है वह वेश्या हो जाय !

प्रेमलता कांप उठी।

—o—

[ १७ ]

निशीथ को लखनऊ आये आज दो दिन हो गये। उसके एक मित्र का विवाह था। आज जब सब कामों से उसे अवकाश मिला तब वह घूमने के लिए निकल पड़ा। शहर घूमता हुआ वह कौंसिल हाउस के सामने से चला जा रहा था ! रायल होटल की यह विशाल इमारत है—कितनी बड़ी ! कितना वैभव है ! निशीथ सोच रहा था कि सहसा उसकी दृष्टि सामने से आती हुई एक स्त्री पर पड़ी। पैर रुक गए, जैसे किसी ने उन्हें बांध लिया हो। आंखें उस स्त्री पर अटक सी गईं। निशीथ क्षण भर उसी प्रकार खड़ा रहा। स्त्री की गोद में एक छोटा बालक था। निकट आकर वह खड़ी हो गई तो निशीथ के मुंह से निकल गया—बड़ी !

‘हां !’ महाराजिन के मुंह से निकला पर जैसे वह कांप रही थी।

सहसा निशीथ को जैसे कुछ ध्यान आ गया। उसने पूछा—और यह बच्चा तुम्हारा है ?

‘जी हां, इसे अपना बच्चा कहते मुझे लज्जा नहीं है।’

निशीथ को एक आघात सा लगा, बोला—‘नहीं, नहीं, इसमें कोई लज्जा की बात नहीं, मातृत्व प्रत्येक स्त्री के लिये सबसे शुभ कार्य है।’

महाराजिन रो पड़ी—‘बाबू जी एक आप ही हैं जिसने मुझे समझने का प्रयत्न किया है, जिसने मेरे प्रति सदैव सहानुभूति प्रदर्शित की है। अन्यथा सारे संसार ने मुझे अपने दरवाजे पर से ठुकरा कर निकाल दिया, किसी ने मुझ पर दया नहीं दिखाई।’

‘हुं।’ निशीथ ने उत्तर दिया पर वह कुछ सोच रहा था। सहसा पूंछ पड़ा—और इस बच्चे के पिता ने तुम्हारा कोई साथ नहीं दिया !

‘नहीं दिया बाबूजी यह कैसे कहूँ। वे समाज के सम्मुख पवित्र बने रहना चाहते थे। मेरे लिए, मेरे इस बच्चे के लिए वे अपना गौरव तो नष्ट कर नहीं सकते थे। सो उन्होंने मुझे शहर छोड़ देने के लिए कहा। तब से वे अब तक बराबर बीस रुपये महीने भेज देते हैं। उसी से मैं अपनी जीविका चला लेती हूँ। पर अब मैं उनपर निर्भर नहीं रहना चाहती।’

‘तो तुम मेरे यहां फिर आ सकती हो।’ निशीथ ने कहा।

‘आपके यहां !’ महाराजिन की आंखें आश्चर्य से फैल सी गईं।

‘हां, हां मेरे यहां !’

‘पर यदि ऐसा हो सकता बाबूजी...’

‘नहीं, तुम मेरे साथ चल सकती हो।’

‘नहीं बाबूजी।’

‘मैं कहता जो हूँ।’

‘पर बहू जी।’

‘ओह प्रेमलता !’ क्षण भर निशीथ चुप रहा, फिर बोला—‘नहीं वह तुम्हें रखने से इन्कार नहीं कर सकती।’

महराजिन निशीथ की और आश्चर्य के साथ देख रही थी। निशीथ को समझने को उसने बराबर प्रयत्न किया परन्तु आज तक उसको कुछ समझ में नहीं आ सका। सदैव ही निशीथ ने महराजिन के प्रति सहानुभूति दिखाई है, सदैव ही वह यही चाहता रहा है कि महराजिन को कोई कष्ट न हो, पर यह सब क्यों ?

अधिक वह सोच न सकी, उसने कहा—नहीं बाबूजी, यह नहीं हो सकता। मैं कलंकिनी हूँ मैं आपके यहां रह कर आपको भी बदनाम होते नहीं देख सकती।

‘मुझे इसकी चिन्ता नहीं है महराजिन। यदि तुम आना चाहो तो आ सकती हो। मुझे समाज की बदनामी का भय नहीं है।’

‘बाबूजी, मैं आपकी इस कृपा के लिए आभारी रहूँगी पर—।’

‘खैर, जब तुम्हें आवश्यकता पड़े तब तुम मेरे यहां आ सकती हो।’

और जब महराजिन चली गई तो निशीथ सोचता रहा आखिर उसने महराजिन से ऐसा कह क्यों दिया ? प्रेमलता महराजिन को अपने घर में रख नहीं सकती। घर से निकालने का भी शायद यही कारण था और इस घटना को हुए कई महीने हो गए पर प्रेमलता ने फिर कभी बातों में भी महराजिन का उल्लेख नहीं किया।

महराजिन के घर छोड़ने के बाद उसके और प्रेमलता के बीच जितनी घटनायें घटी थीं उन सभी पर वह विचार करने लगा। उसी घटना को लेकर उनमें जो एक मतभेद उत्पन्न हो गया था वह आज तक फिर न मिट सका। निशीथ बराबर अनुभव करता आ रहा है कि प्रेमलता उससे फिर दूर होती जा रही है। वह जानता है कि प्रेमलता के हृदय में उसके प्रति कोई संदेह घर कर गया है जिसको वह लाख प्रयत्न करने पर भी दूर नहीं कर पा रही है और जब वही संदेह उभर उठता है तब प्रेमलता की उदासीनता का कारण बन जाता है।

लौटने पर निशीथ ने कई बार चाहा कि वह प्रेमलता से महराजिन के सम्बन्ध में कहें परन्तु कह वह नहीं सका। प्रेमलता से उससे अधिक देर तक बात करने का अवसर ही नहीं मिलता। एक दिन उसने उसका ज़िक्र करना चाहा भी तो प्रेमलता तुरन्त ही खिजलाकर बोली—ऐसा कौन सा जादू उसने तुम्हारे ऊपर कर दिया जो आज तक तुम उसे न भूल सके।

निशीथ चुप हो गया। उत्तर भला वह देता भी क्या ?

उस दिन के बाद फिर कभी उसने प्रेमलता के सम्मुख महराजिन का उल्लेख करने का साहस नहीं किया। उसे स्वयं भी महराजिन का ध्यान नहीं रह गया था पर उस दिन वह प्रातःकाल बँगले की लान में टहल रहा था कि एक स्त्री ने बँगले में प्रवेश किया। उसकी दृष्टि जो उस पर पड़ी तो उसने बड़ी आश्चर्य हुआ।

एक भिखारिनी सी, गोद में एक छोटा सा बच्चा था; महराजिन को देख वह क्षण भर हलुद्धि बना रहा। तभी महराजिन ने उसके निकट आकर कहा—बाबूजी, आपको याद होगा कि आपने कहा था कि जब मुझे आवश्यकता हो मैं आपके पास आ जाऊँ।

‘हां, तुम यहाँ रह सकती हो।’

महराजिन ने फिर कहा—मुझे आपकी बातों पर विश्वास था बाबूजी, इसीलिए मैं यहाँ तक आ गई, नहीं.....

निशीथ को महराजिन की दशा को देख कर आश्चर्य हो रहा था। उसने पूछा—पर महराजिन, तुम्हें ऐसी आवश्यकता पड़ी क्यों ?

महराजिन की आंखों से आंसू गिरने लगे। उसने कहा—बाबूजी आपको याद है जब आप लखनऊ में मिले थे तब मैंने कहा था कि मुझे बीस रुपये मासिक मिलते हैं पर यथार्थ में बात यह थी कि मुझे कई महीने से कुछ भी नहीं मिला था। मैं अपने पास का सब कुछ बेच कर खाती रही और अब जब कि मेरे पास कुछ न रह गया तब मुझे बाध्य होकर कोई और मार्ग खोजने का प्रयत्न करना पड़ा।

मार्ग मेरे लिए खुला था। जी में आया कि मैं आत्महत्या कर लूं, गोमती में जाकर डूब मरूँ पर ऐसा मैं कर न सकी। मुझे अपने प्राणों का भय नहीं है पर अपने इस बच्चे का मुझे बहुत मोह है। मेरे मर जाने के बाद इसका क्या होगा और इसको मर जाने देना मैं चाहती नहीं।

‘खैर तुमने अच्छा ही किया जो यहां चली आई।’ निशीथ ने कहा।

‘आती न बाबूजी तो और मेरा ठिकाना भी तो नहीं था। कोई मुझे नौकर रखना नहीं चाहता। बच्चे के होने के कारण मैं काम भी तो नहीं कर पाती।’

‘महाराजिन तुम हमारे यहां पहले की ही भांति रह सकती हो।’

महाराजिन को लिये हुए वह भीतर आया। प्रेमलता उन दिनों थी नहीं। वह अपने पिता के यहां चली गई थी। निशीथ ने महाराजिन को सब काम समझा दिया। घर में वह इस प्रकार काम करने लगी जैसे कुछ परिवर्तन हुआ ही न हो। पहाड़ी नौकर ने एक बार महाराजिन की ओर और उसके बच्चे की ओर आश्चर्य से देखा, फिर मन में सोचा—यह महाराजिन तो विधवा थीं। हमारे घर से गए इसे साल भर भी नहीं हुए पर अब तो इसके पास एक बच्चा भी है।

उसने चाहा भी कि वह महाराजिन से कुछ पूछे, पर साहस उसका न हुआ।

शाम को प्रेमलता आई तो पहले महाराजिन से ही उसकी भेंट हो गई। प्रेमलता को जैसे बिजली छू गई हो। वह जैसे पत्थर हो गई हो, उसकी आंखें महाराजिन के चेहरे पर जम गई थीं। और महाराजिन आंखें नीची किये हुए खड़ी थी। उसकी आंखों में वेदना का समुद्र उमड़ रहा था। जैसे वह कह रही हो—मालकिन मुझ पर कृपा करें, मुझे अपने घर में रहने दें। मैं आपको कुछ भी हानि नहीं पहुंचाऊंगी, मेरे इस अबोध बच्चे पर दया करें।



पर प्रेमलता ने जैसे उसकी आँखों की इस भाषा का अर्थ नहीं समझा, वह समझना भी नहीं चाहती थी। महराजिन कांपती हुई खड़ी रही तो प्रेमलता ने पूछा—महराजिन यहाँ कैसे आ गईं ?

महराजिन के होंठ हिले पर वह कुछ बोल न सकी।

प्रेमलता ने उससे उत्तर की अपेक्षा नहीं की, दौड़ कर वह निशीथ के कमरे में पहुँची। निशीथ कुछ लिख रहा था। सिर उठा कर उसने प्रेमलता की ओर देखा। प्रेमलता के मुख पर क्रोध के चिन्ह प्रकट हो रहे थे। आकृति लाल हो उठी थी और होंठ फड़क रहे थे। कमरे में पहुँचते ही उसने जोर से कहा—इस महराजिन को घर में किसने आने दिया ?

निशीथ उसी प्रकार शांत बना रहा, उसने उत्तर दिया—उसकी विपत्तियों ने।

‘मैं यह सब कुछ नहीं जानती। मैं पूछती हूँ यह हमारे यहाँ क्यों आई ?’

‘और कहीं उसके लिये स्थान नहीं था।’

‘तो क्या मेरा घर इसीलिए है कि जिसको कहीं स्थान न मिले उसे हम अपने यहां स्थान दें।’

निशीथ क्षण भर प्रेमलता की ओर देखता रहा, फिर उसने कहा—प्रेम, शांत हो। आओ बैठ जाओ तो हम कुछ विचार करें।

‘मैं शांत हूँ; सब मैं समझ कर कह रही हूँ।’

‘नहीं प्रेम, हमें इतनी जल्दी निर्णय करना ठीक नहीं।’

‘ठीक है, मैं कहती हूँ। यही होगा।’

‘अच्छा यही सही परं.....’

‘परं क्या ?...’

‘तुम बैठ जाओ।’ निशीथ ने खड़े होते हुए कहा।

प्रेमलता बैठ गई। निशीथ उसके निकट बैठ कर बोला—देखो प्रेम, वह अनाथिनी है; उसके कोई नहीं है। हमने उसको आश्रय

दिया था तो क्या अब यह ठीक है कि हम उससे अपने उस आश्रय से वंचित करें।

‘तो हम उस कलंकिनी को अपने घर में कैसे रख सकते हैं?’

‘वह कलंकिनी है पर उसके आश्रय जो नहीं है। संसार में यदि वह किसी को अपना कंठ संकती है वह तुम्हीं हो। उसका तुम्हारे ऊपर अधिकार है।’

‘मेरे ऊपर उसका अधिकार क्यों?’

‘इसलिये कि वह तुम्हारी है। तुम्हारे यहां वह थी। तो अब दुःख के दिनों में तुम्हें छोड़ कर कहां जाय?’

प्रेमलता का मुख क्रोध से जल उठा, आंखें उसको स्थिर होकर रह गईं। ऐसा जान पड़ता था जैसे वह भयंकर पीड़ा से व्यथित हो उठी हो। आंचल के कोर को अपनी उंगलियों से बल देते हुए उसने मुंह फेर लिया। निशीथ को भी अपनी पत्नी के इस क्षोभ से सहानुभूति थी। पर महाराजिन को वह द्वार-द्वार रोटी के टुकड़े के लिए भटकते नहीं देखना चाहता। वह जानता है कि ऐसा करके वह अपने ऊपर सदैव के लिये एक आपत्ति ले रहा है। अपने दाम्पत्य जीवन के लिए एक विष घोल रहा है जिससे उसकी सारी शांति मर जायगी, पर वह करे क्या!

निशीथ का सदा से ही स्वभाव रहा है कि कष्ट में पड़े व्यक्ति को वह सहायता करना चाहता है। उसका विश्वास है कि मनुष्य के पापों के लिये दण्ड देने का अधिकार मनुष्य को नहीं है। महाराजिन ने पाप किया है। उसे वह किसी प्रकार उचित नहीं समझता परन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं कि वह उसके लिए उसे मजा देने का अधिकारी हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य भूलें करता है, प्रत्येक मनुष्य से गलतियां होती हैं, प्रत्येक मनुष्य के जीवन में पाप की संख्या अधिक होती है तब फिर कोई किसी को उसके पाप का दण्ड कैसे दे सकता है। अपने पापों के लिए वह ईश्वर के निकट उत्तरदायी है। वही उसे दण्ड दे सकता है। पर मनुष्य नहीं।

पलक मारते ही यह सारे विचार उसके मस्तिष्क में आ गए। उसने कहा—प्रेम, मैं यह जानता हूँ कि महाराजिन का कार्य समाज की दृष्टि में एक महान पातक है; उसके लिए वह उसे क्षमा नहीं कर सकता पर हमें यह अधिकार नहीं है। हम किसी के अच्छे-बुरे कामों के लिये उसे दण्ड देने के अधिकारी नहीं हैं।

‘मैं उसे दण्ड देना नहीं चाहती पर उसे अपने यहां रखने को मैं तैयार नहीं हूँ।’

‘तुम उसे अपने यहां नहीं रखना चाहती क्योंकि तुम उसके पाप के कारण उससे घृणा करती हो। हम समाज के कलंक के लिए उत्तरदायी हैं। जो कुछ समाज में होता है, उस सबकी जिम्मेदारी हमारे ऊपर है। इसलिए हम किसी को पापी कहने के अधिकारी नहीं हैं।’

प्रेमलता थोड़ी देर तक चुप रही फिर उसने कहा—तो तुमने उसे इस घर में रखने का निश्चय कर लिया है।

निशीथ ने प्रेमलता की ओर देखा, वह जानता है कि प्रेमलता को वह किसी तरह समझा नहीं सकता। इसलिए उसे बाध्य होकर कहना पड़ा—प्रेम—प्रेम मुझे बहुत दुःख है। मैं चाहता हूँ कि तुम मेरी बात समझने का प्रयत्न करो। पर मैंने निश्चय कर लिया है।

‘निश्चय कर लिया है कि यह कलंकिनी अपने पाप के पुतले को लेकर हमारा यहां रहेगी।’ क्रोध से प्रेमलता ने प्रश्न किया।

‘पाप का पुतला उस बच्चे को न कहो, प्रेम! पापका पुतला वह क्यों है?’

‘मैं विवाद करना नहीं चाहती। यदि तुम इस स्त्री को घर में रखते हो तो रख सकते हो पर.....’

‘मैंने तो अपना निश्चय बता दिया और तुम जानती हो कि मैं अपने निश्चय पर अटल भी रहता हूँ।’

‘यह मैं जानती हूँ। पर यदि वह घर में रहती है तो फिर मैं और सब नौकरों को जवाब दे देती हूँ। यदि तुम्हारे साथ यह स्त्री रहती है तो और नौकर तुम्हारे साथ नहीं रह सकते।’

‘तुम जो भी उचित समझो कर सकती हो पर जब तक उसका आश्रय और कहीं नहीं हो जाता तब तक मैं उसे अपने यहां से नहीं निकाल सकता ।’

‘यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं उसे वेतन दे सकती हूँ। वह और कहीं जाकर रहे ।’

‘यदि इतना ही करना होता तो यह तो मैं भी कर सकता था। पर ऐसे से अधिक। इस समय उसे सहायुभूति की आवश्यकता है और इससे वह उसे यहीं मिल सकती है ।’

‘तो तुम अपने निश्चय पर अटल हो ।’

‘हां ।’ निशीथ ने उत्तर दिया । फिर क्षण भर कमरे में वह ठहलता रहा । प्रेमलता चुप रही इतना हठ निशीथ ने प्रेमलता से कभी नहीं किया । स्वयं निशीथ को अपने इस निश्चय पर आश्चर्य हो रहा था । उसने कमरे की नीरवता को भंग करते हुये कहा—प्रेम, तुम मेरा विश्वास करो । तुम्हें इस प्रकार अप्रसन्न करने का मुझे बहुत दुःख है पर मैं क्या करूँ ! मैं विवश हो गया हूँ । बेचारी स्त्री के कोई घर नहीं है, कोई उसका सहायक नहीं है, कोई उसके साथ सहायुभूति के दो शब्द कहने वाला नहीं है । मैं उसे अपने यहां से कैसे निकाल दूँ ? यह केवल अपने बच्चे को जीवित रहना चाहती है । वह इस घर में रहेगी ही ।

प्रेमलता उठकर कमरे से बाहर चली गई ।

निशीथ उसी प्रकार बैठा रहा । उसको इस सम्पूर्ण घटना पर आश्चर्य हो रहा था । आखिर इस घटना ने यहां तक उग्र-रूप धारण कर लिया ।

आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे ही उसे नींद आ गई । जब वह जगा तब भी उसकी मानसिक व्यथा कम नहीं हुई थी । कुर्सी के उस सीमित स्थान के भीतर ही वह करवटें लेता पड़ा रहा । मकान में शांति थी । नौकर अपना-अपना सामान बांध चुके थे । महाराजिन अपने बच्चे के साथ पीछे की कोठरी में पड़ी थी । शामको उसने निशीथ और प्रेमलता

को सारी बातें सुनी थी। उसे रह-रह कर अपने जीवन पर दुःख हो रहा था। रात में कई बार उसकी इच्छा हुई कि वह अपनी और इस बच्चे की हत्या कर डाले पर उसका साहस न हुआ। उसके हाथ कांपने लगे और जीवन के मोह ने सब कुछ सह कर भी उसे जीवित रहने को बाध्य कर दिया।

प्रातः उसे उठ कर बाहर आने का साहस नहीं हो रहा था। प्रेमलता के सम्मुख जाते हुए जैसे वह पृथ्वी पर गड़ी जा रही थी। निशीथ को इसका कुछ पता नहीं था।

सहसा प्रेमलता ने कमरे में प्रवेश किया। देखते ही निशीथ ने समझ लिया कि प्रेमलता बाहर जाने के लिये तैयार है। निशीथ के पूछने के पहले ही प्रेमलता ने कहा—नौकरों ने अपना सामान ठीक कर लिया है। मैंने भी अपना सब सामान ठीक कर लिया। मैं पिता जी के घर जा रही हूँ। यह घर उसके लिये है जिसके और कहीं स्थान न हो पर मेरे तो अभी है। इसलिए मैं यहां आकर क्यों रहूँ।

‘प्रेम।’ निशीथ व्यथित हो उठा, उसने ऐसा नहीं सोचा था कि प्रेमलता उसे छोड़ कर चली जायगी। पर बात यहां तक बढ़ गई तो वह दुःखी हो उठा।

प्रेमलता ने उसी प्रकार पति की ओर देखते हुए कहा—तुम कहते हो कि महाराजिन का हमारे ऊपर अधिकार है।

‘प्रेम, मुझे समझाने का प्रयत्न करो।’ निशीथ का हृदय तड़प उठा।  
‘तुम इसके लिए मेरा उत्तर चाहते हो। मैं कहती हूँ महाराजिन का हम पर नहीं केवल ‘तुम’ पर अधिकार है।’

‘प्रेम.....’ निशीथ की वाणी रुक गई, दिल जैसे मुंह को आ गया।

‘और तुम पर दो का अधिकार नहीं रह सकता। इसलिए मैं ही चली जा रही हूँ।’

और वह कमरे के बाहर चली गई ।

निशीथ बहुत देर तक उसी प्रकार बैठा सोचता रहा । प्रेमलता सदैव ही उस पर संदेह करती आई है यद्यपि उसने कभी ऐसा कार्य करने का प्रयत्न नहीं किया जिससे उसे दुःख पहुँचे; फिर उसे यह दर्ज क्यों मिल रहा है ? जब उसका हृदय शांत हुआ तो उसने महाराजिन को बुला कर कहा—महाराजिन, प्रेमलता चली गई है; नौकर भी चले गए हैं । अब सारे घर का प्रबन्ध तुम्हारे ऊपर है ।

‘बाबू जी !’ महाराजिन अधिक कुछ न कह सकी ।

और उस दिन के बाद निशीथ के घर का सारा प्रबन्ध महाराजिन करने लगी । निशीथ दिन भर कालेज में रहता । शाम को आता भी तो खा-पी कर वह फिर निकल जाता । महाराजिन उसके इस प्रकार के निरुद्देश्य जीवन को देखकर मन ही मन दुःखी होती पर उसके पास कोई उपाय नहीं था । वह इस घर को छोड़कर जाय तो कहाँ ? और फिर अब जो हो गया, उसको वह सुधार ही कैसे सकती है ? प्रेमलता निशीथ के ऊपर सन्देह करती है पर महाराजिन ने तो देखा है कि निशीथ सदैव ही उससे दूर रहता है । कभी-कभी वह उसके बच्चे को गोद में लेकर खिलाता रहता है । पर महाराजिन से वह सिवा अत्यन्त आवश्यक बातें कहने के अधिक कुछ नहीं कहता ।

ओह ! क्या करे महाराजिन ?

\*

\*

\*

प्रेमलता उस दिन प्रातः काल डाक्टर शिवाधार के बंगले पर पहुँची तो उसे देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ । अभी कल ही प्रेमलता उनके यहाँ से गई थी और उसके साथ सामानों का यह ढेर देखकर उनके मन में आशंका उत्पन्न हुई, हो न हो कोई अनहोनी बात हो गई है । नहीं तो प्रेमलता इस प्रकार अपने सामान सहित क्यों आती ?

डाक्टर शिवाधार उसे तांगे से उतरते देखकर आगे बढ़ आये । प्रेमलता तांगे से उतर कर बिना कुछ कहे हुये हाल में चली गई और

एक कोच पर गिर कर रोने लगी। उसकी व्यथा फूटकर बह निकली। डाक्टर शिवाधार नौकर को सामान भीतर ले जाने को कह कर हाल में आये तो प्रेमलता को रोते देखकर उसके पास आ बैठ गए और उसके सिर पर हाथ फेरते हुये बोले—क्या है प्रेम ? रोती क्यों हो !

पर प्रेमलता रोती रही। बड़ी देर के पश्चात् जब वह शांत हुई तो कारण पूछने पर उसने कहा—पिता जी, मैं अब उस घर में नहीं रह सकती।

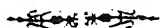
डाक्टर शिवाधार को आश्चर्य हुआ। निशीथ को उन्होंने बहुत निकट से देखा था। आज तक प्रेमलता ने भी उसके विरुद्ध कभी कुछ नहीं कहा था पर आज सहसा प्रेमलता के मुख से यह सुनकर उन्हें कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था। उन्होंने पूछा—आखिर बात क्या है, प्रेम !

प्रेमलता ने पिता की ओर देखा; उनकी सौम्य, शान्त मूर्ति पर चिन्ता की रेखाये खिंच गई थी। उसने सारी घटना ज्यों की त्यों पिता के सामने कह दी। डाक्टर शिवाधार गम्भीर से बने सुनते रहे। जब प्रेमलता ने कहना समाप्त किया तो उन्होंने कहा—प्रेम तुमने बहुत बड़ी भूल की। निशीथ को तुम समझ नहीं सकीं।

प्रेमलता को पिता से ऐसे उत्तर की आशा नहीं थी। वह आश्चर्य से पिता की ओर देखने लगी तो एक निश्वास खींच कर डाक्टर शिवाधार ने कहा—प्रेम ! निशीथ ने ठीक कहा था; उस महाराजिन का तुम दोनों पर अधिकार है।

प्रेमलता चुप रह गई।

क्या उसने सचमुच गलती की ?



[ १८ ]

डाक्टर शिवाधार ने निशीथ को अपने यहाँ बुलाया; वह गया भी; पर प्रेमलता उसी प्रकार अटल बनी रही। पिता ने बहुत समझाया पर

वह निशीथ के घर जाने को राजी न हुई। उस दिन निशीथ डाक्टर शिवाधार के घर से निकला तो उसका हृदय बहुत व्यथित हो उठा था, मस्तिष्क में प्रेमलता का वह स्पष्ट संदेह जैसे काट सा रहा था। पैदल ही वह घर की ओर चल पड़ा, पर उसका शरीर जैसे थक गया हो, चलना उसे कठिन हो रहा था; उसकी गति धीमी पड़ गई। एक तांगा वाला खाली जा रहा था; निशीथ को देखा तो शायद अपनी आदत के अनुसार पुकार उठा—तांगा हुजूर !

निशीथ ने कोई उत्तर न दिया। मन-मन भर के उसके पैर जैसे उसके उठाये न उठ रहे थे। तांगे वाले की बात उसे सुनाई पड़ी या नहीं इसका ज्ञान उसे स्वयं भी नहीं था, वह आगे बढ़ गया तभी तांगे वाले ने फिर पुकारा—हुजूर तांगा लाऊँ, तांगा हुजूर !

जैसे निशीथ को वह पहचानता हो। निशीथ की विचार-धारा भङ्ग हो उठी। ठहर कर उसने एक बार तांगे की ओर देखा फिर बिना कुछ उत्तर दिये हुये वह तांगे की ओर बढ़ा। तांगा रुक गया था। पीछे की सीट पर जाकर वह लेट गया तो तांगे वाले ने पूछा—कहाँ चलना होगा हुजूर !

वह कहाँ जाय ! कहीं भी तो शांति नहीं है। सो कह दिया—कहीं भी चलो बस चलते रहो जब घर लौटना होगा तब मैं तुमसे कह दूंगा।

तांगे वाले ने घोड़े को एक चाबुक लगाया। घोड़े ने अपना सिर ऊपर उठाया और फिर उसके पैर उठ गये। सड़क पर घोड़े के खुरों की टप-टप, पहियों के नीचे पिसते हुये पत्थर के छोटे छोटे टुकड़ों की कर-कर-निशीथ को सुनाई न पड़ रही थी।

निशीथ की विचारधारा तीव्रतर हो गई। उसकी गति तांगे की गति से कहीं अधिक थी। निशीथ सोच रहा था कि दाम्पत्य जीवन में जब संदेह घर कर जाता है तब वह स्थिर रह ही नहीं सकता, उसका भङ्ग होना अनिवार्य हो जाता है। प्रेमलता मुझ पर संदेह करती है। वह समझती है मैं महराजिन को प्रेम करता हूँ, उसका बच्चा मेरा है। अह-ह !



उसे हंसी आ गई और वह पागलों की भांति जोर से हंस पड़ा। तांगे वाले ने मुड़कर उसकी ओर देखा आश्चर्य के साथ। शायद सोचा होगा कि यह पागल तो नहीं है? कहीं मेरे पैसे भी न दे? उसने घोड़े की चाल तनिक और तेज कर दी, खुली सड़क की ठण्डी हवा के भोंके आकर निशीथ के मस्तक से टकराने लगे पर वह उसी प्रकार बना रहा।

सारे शहर का चक्कर लगा तांगा अब शहर से बाहर जाने वाली सड़क पर आ गया था। निशीथ को इसका जैसे कुछ पता ही न हो। तांगेवाले ने पूछा—चलूँ दुजूर इधर भी।

‘हाँ, हाँ चलो!’ उसने थंन्नवत उत्तर दिया।

और तांगा बढ़ चला।

तारे निकल आये; चाँदनी छिटक गई; सड़कों के किनारे लगे बिजली के खम्भे जगमगा उठे; तांगे वाले ने भी तांगा रोक कर अपनी बत्ती जलाई और फिर तांगा चल पड़ा। निशीथ को ऐसा लग रहा था कि वह जीवन भर इसी प्रकार घूमता रहे।

रात हो गई ग्यारह बज गये। तांगे का घोड़ा चलते-चलते थक गया था; मुँह से सफेद फेन की बूँदे गिर कर पृथ्वी पर बिखर रही थीं। तांगे वाले को भी घर पहुँचना है। घर वाली उसकी प्रतीक्षा करती होगी, बच्चे खा-पी कर सो गये होंगे, पर तांगे की आहट पाते ही वे उसे घेर लेंगे। एक-एक दो-दो पैसे वह उसके हाथों पर रख देगा और वे फिर अपनी खाट पर जाकर लेट रहेंगे।

उसने धीरे से कहा—बाबू जी ग्यारह बज गये हैं।

ग्यारह बज गये तो क्या हुआ? निशीथ तो सारी रात इसी प्रकार घूम कर काटना चाहता है, लेकिन नहीं, तांगे वाला तो ऐसा नहीं कर सकता।

उसने तांगे वाले को घर का पता बता दिया। बंगले पर पहुँच कर वह तांगे पर से उतर गया। जेब से दस रुपये का नोट निकाल कर उसने तांगे वाले के हाथ पर रख दिया और बंगले के भीतर चला गया। तांगावाला

नोट को हाथ में लिये देखता रहा फिर बंगले के भीतर जाते हुये निशीथ को एक बार देखा । यह व्यक्ति अवश्य ही पागल होगा ? नहीं इतनी देर के लिये भला कोई दस रुपये दे देगा । ताँगी वाले को दुःख तो हो रहा था कि वह उसे सारी रात ही क्यों न घुमाता रहा । एक आह खींच कर उसने ताँगा घर की ओर हाँक दिया !

बंगले के बाहरी दरवाजे पर पहुँच कर निशीथ बेत की एक कुर्सी पर बैठ गया । महाराजिन को पुकारने का उसे साहस न हो रहा था । वह कितनी देर तक उसी प्रकार बैठा रहा इसका अनुभव उसे स्वयं ही नहीं था कि सहसा दरवाजा खुला ! महाराजिन आकर खड़ी हो गयी । वरामदं में बिजली जलते देख उसे सन्देह हुआ था । बाहर निशीथ को इस प्रकार बैठे देख उसे आश्चर्य हुआ । बुलाया क्यों नहीं ? यदि सहसा उसकी नींद न खुल जाती और बाहर प्रकाश देख उसने दरवाजा न खोला होता तो यह रात भर इसी प्रकार बैठे रहते ।

‘आप बड़ी देर से बैठे है क्या ?’

निशीथ जैसे चौंका, बोला—‘नहीं, अभी आया ।’

और भीतर प्रवेश कर वह अपने कमरे में जाकर लेट रहा । महाराजिन ने पूछा—‘खाना खाइयेगा ?’

‘नहीं बड़ी !’

फिर क्षण भर उसकी ओर देखता रहा—हंस पड़ा पागलों की भाँति, महाराजिन को निशीथ की हंसी से आश्चर्य और भय दोनों ही हुआ । वह कमर से चली ही जाना चाहती थी कि निशीथ ने कहा—‘बड़ी, जानती हो प्रेमलता समझती है कि तुम्हारे इस बच्चे का पिता मैं हूँ । हा, हा, कितनी पगली है ! अब वह मेरे यहाँ नहीं आयेगी, अपने पिता के ही साथ रहेगी । आज मैं उसके यहाँ गया था । पर वह नहीं मान सकी कि मैं निष्कलंक हूँ ।’

और वह जोर से हंस पड़ा ।

महाराजिन के मुख से केवल एक ही शब्द निकला—‘बाबू जी ?’

और वह कमरे से बाहर चली गई। निशीथ उसी प्रकार चारपाई पर पड़ा रहा। कब उसे नींद आगई इसका उसे पता भी नहीं। नींद की इस अस्थायी मृत्यु में मग्न हो कर वह विस्मृति के मोती चुनता रहा।

जब उसकी नींद खुली तो उसने देखा कि खिड़की से सूरज की रोशनी आकर उसके वक्तस्थल पर खेल रही है। नींद ने उसके मस्तिष्क के भारीपन को कम कर दिया था। कमरे की धूप देखकर वह उठ खड़ा हुआ। निकट ही मेज़ पर एक छोटी सी घड़ी रखी है जो टिक-टिक करके अपनी गति का परिचय देती रहती है। निशीथ ने घड़ी की ओर देखा—अरे, आठ बज गये! और अभी तक महाराजिन ने उसे जगाया नहीं था।

सोचा, शायद महाराजिन ने सोचा होगा कि वह रात में अधिक देर तक जागा था। उसने एक सिगरेट जलाई और रसोई घर की ओर चला। पर रसोई घर खाली था। महाराजिन का कहीं पता नहीं था। उसने एक बार इधर-उधर देखा फिर महाराजिन के कमरे के निकट आकर उसे पुकारा। कोई उत्तर न मिला। केवल बच्चा रो रहा था।

निशीथ ने कमरे के दरवाजे को धीरे से भीतर की ओर डेल दिया!

बच्चा एक ओर खाट पर पड़ा रो रहा था और महाराजिन का शरीर छत से लटक रहा था। निशीथ ने जल्दी से महाराजिन के शरीर को रस्ती से खोलकर खाट पर लिटा दिया। शायद अभी कुछ जीवन शेष हों। बच्चा माँ के शव से चिपट गया। जैसे अंतिम बार वह माँ के शव को अपने में समेट लेना चाहता हो। तभी निशीथ की दृष्टि खाट के निकट फर्श पर पड़ी। शायद आत्महत्या करने के पूर्व महाराजिन कुछ लिख रही थी। कलम दावात और कागज़ अब तक पड़े थे। निशीथ ने कागज़ उठा लिया। एक पत्र था। निशीथ पढ़ने लगा—

‘मेरी स्वामिनी,

अपने पापों का परिणाम मैं भोग रही हूँ। अपना ही नहीं दूसरों का अहित मैंने किया है। पर मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि यदि

मैंने अपने पाप के लिये उत्तरदायी व्यक्ति का नाम आप सबके सम्मुख प्रगट कर दिया होता तो शायद आप इतनी दुःखी न होती। आपके दाम्पत्य जीवन में मैं विष बन कर उगती रही, इसका मुझको बराबर अनुभव होता रहा पर मैं उस संदेह को मिटा न सकी। कितनी ही बार मैंने अपना अन्त करके इस परिस्थिति का अन्त करना चाहा, पर अपने बच्चे को मैं इतना चाहती थी कि अपने निर्णय को कार्य में परिणित करने की शक्ति मुझमें न आ सकी। परन्तु कल जब से बाबूजी आपके यहां से लौट कर आये हैं, मुझे अनुभव हो रहा है कि मैं अपने बच्चे की रक्षा नहीं कर सकती। समाज मेरे पापों के लिए मेरे बच्चे को जीवित नहीं रहने देना चाहता। संसार में केवल आपके पति ने मेरे साथ दया का बर्ताव किया। इसके लिए उन्हें आपके संदेह का पात्र बनना पड़ा, आप उनसे रुष्ट होकर यहाँ से चली गईं और कल जब आपने अन्तिम बार यहाँ आने से इन्कार कर दिया तो वे कितने दुःखी हो उठे यह मैं सहन न कर सकी। स्वामिनी, यदि मृत्यु के पश्चात् मनुष्य के जीव को ईश्वर के सामने अपने कर्मों का उत्तर देने के लिए जाना पड़ता है तो मुझको भी जाना पड़ेगा। मैं उस ईश्वर के सम्मुख उसकी अनीति की शिकायत करूँगी और बताऊँगी कि उसी की सृष्टि में उससे कहीं अधिक दयालु व्यक्ति पड़े हैं। आपके पति उन सभी में सर्वश्रेष्ठ हैं। मेरा हृदय उनके प्रति कृतज्ञता का भार लेकर मृत्यु का आलिङ्गन करने जा रहा है। उनके इस दोष का कारण मैं हूँ और अपनी मृत्यु द्वारा भी यदि मैं उनके ऊपर लगे हुए इस कलंक को मेट सकी तो अपने को धन्य समझूँगी।

पृष्ठ समाप्त हो गया। निशीथ ने उलट कर दूसरी ओर पढ़ना आरंभ किया—

‘मेरी स्वामिनी, मैं कलंकिनी हूँ परन्तु आपसे मैं प्रार्थना करूँगी कि आप मुझे समझने का प्रयत्न करें। मेरे पतन का उत्तरदायित्व आप पर भी है। यदि आप मुझ पर संदेह न करतीं यदि आपको अपने पति पर

विश्वास होता तो क्या आज यह परिस्थिति आ सकती थी ? आपने मुझे अपने पति के पास अकेले छोड़ जाना उचित नहीं समझा और मुझे लेकर अपने बीमार पिता के यहां चली गईं। आपको अपने पिता पर विश्वास था और आप मुझे उनके पास छोड़ कर चली आईं। पर आप विश्वास करें कि मेरे पतन का उत्तरदायित्व आपके पिता पर है। उन्होंने ही मुझे कुमार्ग पर चलने को बाध्य किया। उन्होंने मुझे समाज के सम्मुख पतिता के रूप में प्रस्तुत किया। पर मैं उन्हें समाज के सम्मुख बदनाम करना नहीं चाहती थी; उन्हें मैंने प्रेम किया है और अब भी करती हूँ। उन्होंने मुझे अपने जीवन से निकाल कर फेंक दिया पर उन्होंने अपना प्रतीक देकर मेरी गोद भर दी है।

और उसी प्रतीक के लिए मैं जीवित रहना चाहती थी, पर रह न सकूंगी। अब अन्तिम समय आपसे मेरी एक प्रार्थना है, आशा है आप मुझे निराश न करेंगी। आपके पति ने मुझ पर सदैव कृपा की है परंतु आपको विश्वास दिलाती हूँ कि उनकी भावनाएँ सदा शुद्ध रही हैं। वे मनुष्य के रूप में देवता हैं। आप उन्हें ठीक समझ सकीं तो मैं समझूंगी कि मेरी मृत्यु का उद्देश्य पूरा हुआ।

अपने इस बच्चे को मैं अनाथ छोड़े जा रही हूँ। इसका क्या होगा यह मैं नहीं जानती, पर यदि आप इसके जीवित रहने का कोई प्रबन्ध कर देंगी तो स्वर्ग में भी मेरी आत्मा आपकी कृतज्ञ रहेगी। मेरी मृत्यु के लिए समाज उत्तरदायी है, यह मैं नहीं कह सकती क्योंकि समाज का मुझे भय नहीं था फिर भी अपने एकमात्र रक्षक का इतना दुःख मैं अपने ही कारण देख नहीं सकती। इसलिए सर्प सी लटकती इन रस्सियों का आलिंगन करने के सिवा मेरे पास और कोई चारा नहीं है। आशा है आप मुझे क्षमा करेंगी।'

पत्र समाप्त हो गया। निशीथ के आंखों से आंसू गिरने लगे। महाराजिन का अभाव इस समय उसे असह्य हो उठा। जी में आया कि वह एक बार डाक्टर शिवाधार के सम्मुख जाकर कहे कि उनके पापों

के कारण ही एक स्त्री को अपनी बलि देनी पड़ी। जब वे उसको अपना नहीं कह सकते थे तब फिर उसे पतित करने का अधिकार ही उन्हें क्या था ? उसी क्षण उनकी दृष्टि उस बालक पर पड़ी जो मृत माँ के स्तन में दूध न पाकर फिर रोने लगा था। निशीथ ने उसे उठा कर गोद में ले लिया। पत्र अभी तक उसकी उंगलियों के बीच दबा हुआ था।

बच्चा उसकी गोद में आते ही चुप हो गया। निशीथ ने एक बार बालक की ओर देखा, उसे इस गम्भीर परिस्थिति में भी हंसी आ गई। कमरे से वह बाहर चला आया।

समाचार फैलते देर न हुई कि निशीथ का बंगला पुलिस से घिर गया। डाक्टर शिवाधार ने भी सुना तो प्रेमलता के साथ आ गए। मामला आत्महत्या का था पुलिस ने अपना कार्य शीघ्र समाप्त कर रिपोर्ट दे दी, इस बीच निशीथ चुपचाप बैठा रहा।

पुलिस के चले जाने के पश्चात् निशीथ ने पत्र प्रेमलता को दे दिया। पढ़कर प्रेमलता ने एक बार अपने पिता की ओर देखा फिर पति के चरणों पर गिर पड़ी।

डाक्टर शिवाधार निशीथ के यहां से लौट आये। प्रेमलता ने बच्चे को अपनी गोद में ले लिया। गोद में पहुँचते ही बालक के मुख पर प्रसन्नता की एक रेखा खिंच गई—जैसे उसके मुख पर की कलंक की सारी कालिमा धुल गई हो।

+

+

+

महाराजिन के दाह-संस्कार के पश्चात् निशीथ लौटा था। प्रेमलता अपने कमरे में बैठी घटनाओं पर विचार कर रही थी। उसे क्षोभ हो रहा था कि उसने व्यर्थ ही में निशीथ पर संदेह करके अपने जीवन को दूभर कर लिया था। निशीथ को आया देख वह उठ खड़ी हुई। महाराजिन के बच्चे को उसने सुला दिया था। बालक ने करवट ली तो प्रेमलता ने उसे थपकी देकर फिर सुला दिया। निशीथ को प्रेमलता के इस कृत्य पर जैसे हंसी आ गई। उसने मुस्करा कर कहा—देखता हूँ, प्रेम, तुमने थोड़े से समय में ही बालक से काफ़ी मोह उत्पन्न कर लिया है !

प्रेमलता चुप रही। कोई उत्तर उसने न दिया तो क्षण भर बालक की ओर देखते रहकर निशीथ ने कहा—देखो प्रेम, हम किसी व्यक्ति को समझने में कितनी भूल करते हैं? महाराजिन हमारे कुटुम्ब के प्राणी की भांति रह रही थी। शायद इतना सब अपमान सहने के उपरान्त वह लौटकर जो फिर हमारे यहाँ आई उसमें भी उसका यही रहस्य था। हमसे दूर वह रह कैसे सकती थी?

प्रेमलता ने पति की ओर देखा; उसकी आँखों में वेदना की, पश्चाताप की व्यथा थी। बालक की ओर देखकर उसने एक निश्वास ली, फिर बोली—मैंने व्यर्थ ही तुम पर संदेह किया था पर तुमने भी कभी उस संदेह को दूर करने का प्रयत्न जो नहीं किया।

‘मैं जानता था कि तुम्हारा यह संदेह समय स्वयं दूर कर देगा। प्रत्येक मनुष्य के हृदय के कोने में एक रहस्य निहित होता है और उसको वह प्रगट चाहे न कर सके पर उसकी रक्षा के लिये वह सजग सदैव रहता है। महाराजिन ने एक राज्ञ को अपने अन्तर के भीतर छिपा रखा था। शायद इसलिये कि वह सबके सम्मुख किसी दूसरे की कम-जोरी को प्रगट करना नहीं चाहती थी परन्तु हमने अपनी भूलों के द्वारा उसे बाध्य कर दिया।’

प्रेमलता ने एक निश्वास ली, बोली—ऐसा लगता है जैसे उसकी हत्या हमने ही कर दी।

निशीथ गम्भीर हो उठा—हत्या कोई किसी की नहीं करता, प्रेम! मनुष्य ऐसी कल्पना भर करता है। परन्तु हत्या तो हम अपनी आप भी नहीं कर सकते। परिस्थितियाँ ही हमें हत्या करने के लिये बाध्य करती हैं। इसलिये हम नहीं वे ही उसके लिये जिम्मेदार होती हैं।

‘पर हम उन परिस्थितियों के ऊपर अपने उत्तरदायित्व का भार तो डाल सकते हैं।’ प्रेमलता ने कहा।

‘परिस्थितियाँ हमें बाध्य करती हैं’ निशीथ ने कहा—‘एक अज्ञात शक्ति के इंगित पर यह समस्त संसार चलता है, प्रेमलता! हम नहीं

जानते कि हम किस लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। यह अज्ञात शक्ति ऐसा जान पड़ता है कि पहले से ही सारा खेल सोच रखती है—हम उसके हाथों के पात्र हैं और उसके इशारे पर हम कार्य करते हैं। इसलिए हमारा उत्तरदायित्व कहाँ आता है? महाराजिन की मृत्यु का उत्तरदायित्व हम अपने ऊपर समझते हैं पर यथार्थ में हमारा उद्देश्य उसकी मृत्यु नहीं थी। हम तो केवल परिस्थितियों के अनुसार कार्य कर रहे थे। यह तो उस अज्ञात शक्ति की इच्छा ही थी। जिसके सम्मुख हम सिवा अपनी पराजय स्वीकार करने के और कुछ नहीं कह सकते।’

प्रेमलता क्षण भर तक निशीथ की बात पर विचार करती रही, फिर उसने कहा—‘तुम्हारी बातें विचित्र हुआ करती हैं। मुझमें तुम्हारी बातें समझने की शक्ति नहीं है पर यह अवश्य है कि उस क्षण से ही मैं महाराजिन की मृत्यु के लिये अपने को जिम्मेदार समझ रही हूँ।’

‘पर प्रेम, यह तुम्हारी भूल है; किसी की मृत्यु का कोई जिम्मेदार नहीं हो सकता।’

‘सम्भव है, पर मैंने महाराजिन के साथ जो अन्याय किया है उसका प्रतिकार मुझे करना ही होगा। बिना ऐसा किये मुझे शांति नहीं मिल सकती। महाराजिन की सबसे प्रबल इच्छा अपने इस बच्चे को जीवित रखने की थी। उसकी यह इच्छा पूरी होनी ही चाहिये। हमारा यह कर्तव्य है कि हम चाहे जिस प्रकार से हो इस बच्चे को किसी प्रकार का कष्ट न होने दें।’

‘तो तुम्हारा अभिप्राय यह है कि तुम इसको पाल लेना चाहती हो?’ निशीथ ने आश्चर्य के साथ पूछा। उसकी आकृति पर विजय की रेखायें चमक उठीं।

प्रेमलता की आंखों में दृढ़ निश्चय क्रीड़ा कर रहा था—‘हां, मैंने निश्चय कर लिया है।’ उसने कहा—‘मैं इस बच्चे को पालूंगी। शायद इसी से महाराजिन की मृत-आत्मा को शांति मिल सके। मुझे इसको भाई स्वीकार करने में कोई लज्जा नहीं।’



निशीथ प्रसन्नता से मुस्करा उठा - प्रेम, मैं जानता हूँ कि तुममें समझदारी की मात्रा अधिक है। इस बच्चे को तुम्हारे आंचल की ओट में पलते देख कर मुझे प्रसन्नता ही होगी और साथ ही इससे महाराजिन की आत्मा को शांति भी मिलेगी।

बालक जग उठा तो प्रेमलता ने उसे गोद में उठा लिया। निशीथ क्षण भर प्रेमलता की भरी गोद को देखता रहा। स्त्री मातृत्व की कितनी अधिकारिणी हैं ? प्रेमलता के अन्तर में इतने दिनों से मातृत्वकी छिपी हुई ममता को इस बालक ने जागृत कर दिया है। वह एक परायी स्त्री का बच्चा है परन्तु प्रेमलता उसे किस प्रकार अपने हृदय से लगा कर रख रही है।

प्रेमलता की गोद में आकर बालक इस प्रकार प्रसन्न हो उठा जैसे वह बहुत दिनों से इन हाथों के संरक्षण से परिचित हो। निशीथ पल भर उसकी ओर देखता रहा, फिर प्रेमलता से कहा—प्रेम, देखो हम कितने अशान हैं ? उस शक्ति का प्रत्येक कार्य किनता रहस्य पूर्ण है। क्या हम कुछ भी जान सकते हैं ! सोचो तो यदि महाराजिन जीवित रहती तो क्या कभी इस बालक को तुम्हारा स्नेह प्राप्त हो सकता था। सम्भव है यह सब कुछ इस बालक के हित के लिए ही हुआ हो।

‘हमें अब तो ऐसा ही समझना चाहिये। महाराजिन का यह बच्चा अब अपना बच्चा होकर रहेगा।’

निशीथ चुप हो गया पत्नी की ओर वह देख रहा था, जैसे कुछ जानने का प्रयत्न कर रहा हो।

उस दिन निशीथ अधिक विचार-मग्न रहा, प्रेमलता ने भी उसकी विचार-शृङ्खला को भंग नहीं किया। वह अपने कमरे में जाकर लेट रहा। सारी घटनायें उसकी आंखों के सम्मुख जैसे नाच रही थीं और उनके ऊपर उठ कर महाराजिन का वह हँसता हुआ सा चेहरा उसे दिखाई पड़ रहा था। जब तक महाराजिन जीवित रही उसने सबकी उपेक्षा ही प्राप्त की। उसका यह बच्चा पाप की संतान कहा जाता था। पर पापी

तो आज तक उसी प्रकार सुरक्षित है, उसका तो कुछ भी अहित नहीं हुआ। तो क्या ईश्वर भी अपनी सृष्टि में निर्बल को ही अपने पापों का दण्ड देता है ? क्या डाक्टर शिवाधार इस पाप के भागी नहीं हैं। निशीथ को स्वयं अपने विश्वासों पर अविश्वास सा उठा। पर उसी क्षण जैसे वह चौंक सा पड़ा। वह यह सब क्या सोच रहा है। उस अज्ञात शक्ति के कार्यों पर विचार करने के अधिकारी हम नहीं हैं। हम तो उस खेल की वाजी के मोहरे हैं। हमें यह कैसे ज्ञात हो कि हमारा लक्ष्य क्या है ? खेलने वाले की उंगलियां हमें उठाकर जिस ओर को चाहती हैं ले जाकर डाल देती हैं और उन्हीं के इशारों पर अपनी शक्ति भर हम अपने कर्तव्य को पूरा करते हैं।

प्रेमलता को घर में जैसे अच्छा न लग रहा था। बच्चे को गोद में लिए हुए वह बाहर निकली। बंगले से अधिक दूर न गई थी कि मणि मिल गई। देखते ही वह प्रेमलता के पास आ गई, बोली—कहो प्रेमलता बहिन, आज तो तुम्हारे यहां की घटना सुन कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। तभी से सोच रही थी कि तुम्हारे पास चलूं पर आ न सकी।

प्रेमलता के अन्तर की वेदना निकलने के लिए उभर आई। उसने कहा—मणि, मैंने भूल की और यह उसी का परिणाम है। हम कितने अविश्वासी हैं ? अपने अविश्वास में, अपनी भूलों के बीच हम सबैव ही अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं।

मणि को प्रेमलता की बातों पर आश्चर्य हुआ, वह उसकी ओर देखने लगी तो प्रेमलता ने कहा—यह महाराजिन का बच्चा है। मैंने इसे पाल लिया है। अपने पति पर मैंने व्यर्थ में ही संदेह किया था उसी का प्रायश्चित्तस्वरूप मैं यह कर रही हूं।

मणिके अधर खुले; वह मुस्कराने जा रही थी कि प्रेमलता की गम्भीर मुख-मुद्रा देखकर उसका साहस हंसने को न हुआ, वह उसी प्रकार प्रेमलता की ओर देखती रही। प्रेमलता ने कहा—मणि, तुम्हें स्मरण होगा तुमने उस दिन मुझसे कहा था कि वे नयना को प्यार करते हैं। उस

दिन मैंने तुम पर विश्वास कर लिया था। उस संदेह ने अपना रूप यहाँ तक विस्तृत बना लिया कि मुझे महाराजिन पर संदेह हुआ। मैंने समझा कि महाराजिन के इस बच्चे के पिता वे ही हैं। यही सोच कर जब दुबारा महाराजिन हमारे घर में रहने के लिये आई तो मैं स्वयं ही घर छोड़कर पिता के यहाँ चली गई पर आज अपनी वह भूल मुझे समझ पड़ रही है कितनी बड़ी भूल मैंने की।

मणि थोड़ी देर तक प्रेमलता की बातों पर विचार करती रही। उसे ऐसा जान पड़ा जैसे यह वातावरण प्रत्येक मनुष्य के लिये अपने हृदय के रहस्य को खोलकर रख देने का था, जैसे उसे अपने पाप स्वीकार करने के लिए कोई आमन्त्रित कर रहा हो। उसने कहा—प्रेमलता बहिन, तुम मुझे क्षमा करो। मैंने व्यर्थ में ही तुम्हारे हृदय में संदेह उत्पन्न किया था। निशीथ को मैं प्यार करने लगी थी पर उन्होंने मेरे प्रेम की अवहेलना की। मुझे किसी भी पुरुष से ऐसी आशा नहीं थी उस समय मैंने उन्हें जो नयना के साथ देखा तो मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे इस नयना के कारण ही वे मुझे अपने प्यार से बंचित कर रहे हैं। इसी कारण नयना के प्रति मैं घृणा तथा ईर्ष्या से जल उठी। मैंने सारी बातें तुमसे कही थीं कि शायद इससे तुम निशीथ को नयना से दूर रख सको। पर नहीं यह मेरी भूल थी। निशीथ बाबू पर किसी स्त्री का आकर्षण कभी कार्य नहीं कर सकता। इसका अनुभव मैंने बहुत विलम्ब से किया जब अपनी भूल का परिमार्जन करने का समय न रह गया था।

मणि चुप हो गई तो प्रेमलता को बरवश हंसी आ गई। कितनी भूलों का एक जाल सा बुन उठा है। मनुष्य इसी प्रकार तो भ्रम का शिकार बना रहता है। और उस पर भी आश्चर्य यह है कि हम अपने को इस भ्रम से बाहर निकालने का एक बार भी प्रयत्न नहीं करते। मणि ने प्रेमलता को हंसते देखकर पूछा—तुम मुझ पर हंस रही हो ?

प्रेमलता गम्भीर हो उठी, बोली—मणि मैं तुम पर नहीं हंस रही हूँ। पर सोचती मैं यह हूँ कि भूलों के ताने-बाने से ही जैसे हमारा यह

समस्त जीवन बना हुआ है। इन भूलों से अपने को दूर रखने का प्रयत्न भी तो हम नहीं करते हैं।

मणि ने कोई उत्तर न दिया। प्रेमलता के साथ वह दूर तक टहलती हुई चली गई। सारी घटना उसने ज्यों की त्यों प्रेमलता को सुना दी। प्रेमलता की अंतर-व्यथा बढ़ती ही जा रही थी। जब वह लौटी तब काफी देर हो गई थी। अन्दर जाकर देखा कि हाल में निशीथ के पास उसके पिता बैठे हैं।

प्रेमलता ने बच्चे के साथ हाल में प्रवेश किया तो डाक्टर शिवाधार ने कहा—प्रेम तुमने इस बच्चे को पाल लिया यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। बेचारा अनाथ बच्चा तुम्हारे आश्रय के बिना मर जाता।

‘अनाथ वह क्यों था पिता जी!’ प्रेमलता ने साधारण भाव से उत्तर दिया, पर डाक्टर शिवाधार को लगा जैसे वह उससे कह रही हो इस बच्चे की मां तो मर गई पर पिता—डाक्टर शिवाधार के जीते जी वह अनाथ क्यों है ?

डाक्टर साहब ने कहा—प्रेम, तुम्हारा हृदय विशाल है। दूसरे के बच्चे को अपनाना प्रत्येक स्त्री की शक्ति के बाहर की बात है। मैं आज तुम्हारी मौसी के पास इसीलिए गया था। मैंने सोचा था कि शायद बच्चे का कोई प्रबन्ध न हो सके तो मैं उसे मालती के ही पास रख दूँगा। मालती ने यह बात स्वीकार भी कर ली थी।

‘पर मौसी को इसके लिए कष्ट करने की आवश्यकता न होगी।’ प्रेमलता ने उत्तर दिया।

डाक्टर शिवाधार थोड़ी देर और बैठे रहे। इधर-उधर की बातें होती रहीं, फिर वह उठ कर चले गये तो प्रेमलता को अपने पिता के प्रति बड़ी घृणा लगी। पुरुष कितना कायर होता है। इतना सब होते हुए भी तो वह अपनी भूल स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। बच्चे के लिए चिन्तित हैं पर अपनी क्षति वे उठा नहीं सकते। समाज के सम्मुख वे उसी प्रकार पवित्र बने रहना चाहते हैं। और एक वह भी तो थी—

महाराजिन ! अन्त तक वह उनके सम्मान की रक्षा करने के लिए उनके नाम को छिपाती रही। वह चाहती तो प्रकट करके उन्हें समाज के सम्मुख उसी प्रकार अपमानित कर सकती थी जिस प्रकार वह स्वयं हो रही थी, परन्तु ऐसा उसने नहीं किया।

निशीथ सोच रहा था; डाक्टर शिवाधार के अन्तर में इस बच्चे के प्रति मोह है। सम्भव है किसी समय यह मोह उन्हें अपने पाप को स्वीकार करने के लिए बाध्य करे। मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि पहले वह अपनी भूल को चाहे न स्वीकार करे परन्तु परिणाम के सामने आ जाने पर उसकी अन्तरात्मा उसे बहुत कुछ स्वीकार करने को बाध्य करती है। उस समय वह अपने ऊपर विजय नहीं पा सकता। अन्तरात्मा की विजय के लिये सबसे अनुकूल यही समय होता है।

डाक्टर शिवाधार प्रेमलता के पास से लौटे तो उनके मस्तिष्क में विचारों का द्वंद्व मचा हुआ था। उन्हें लग रहा था जैसे उन्होंने महाराजिन की हत्या की है। बार-बार उनकी इच्छा होती थी कि वे अपना पाप स्वीकार कर लें। पर करके वे क्या करें ? कोई लाभ तो उससे होगा नहीं। महाराजिन तो आखिर मर ही गईं। उन्हें आज महाराजिन के लिए बड़ी 'विधा' लग उठी। कितनी सज्जन थी बेचारी। उनकी आँखों के सम्मुख कुछ चित्र आकर चलने-फिरने लगे।

वे बीमारी से उठे थे; कमजोरी अभी थी सो प्रेमलता महाराजिन को उनके पास देख-रेख करने के लिए छोड़ गई थी। और उस दिन जब महाराजिन उन्हें दवा पिलाने के लिए आईं तो उन्हें मालती के साथ की वह घटना याद आ गई। उन्होंने दवा पी ली और फिर महाराजिन को रोक लिया।.....और उस दिन का वह प्रमाद ही इस सारी घटना के लिये उत्तरदायी है। × × ×

फिर उस दिन रात में वह उनके पास आईं। प्रेमलता को उसके पाप का पता चल गया था। उसने उसे अपने घर से निकाल दिया था। डाक्टर साहब ने उसे आशा दिलाई थी कि वे उसे अपने यहां रख

लेंगे । समाज के सम्मुख वह बदनाम न हो पायेगी । पर उस दिन जब वह आ ही गई तो उन्हें बड़ी परेशानी जान पड़ी । उन्होंने महाराजिन को अपने सम्मान का स्मरण दिलाया । कहा, वे उसे किसी तरह का कष्ट न पहुँचने देंगे पर अपने घर में वे उसे रख कैसे सकते हैं ? उन्होंने उसे थोड़ा सा रुपया देकर कह दिया किसी और शहर को चली जाओ, वही रहना खर्च मैं भेजता रहूँगा । वह चली गई पर डाक्टर साहब को फिर रात भर नींद न आई । × × ×

और फिर कुछ दिन बाद लखनऊ से महाराजिन का एक पत्र उन्हें मिला था जिसमें उसने लिखा था कि उसके बच्चा हुआ है । डाक्टर साहब ने सौ रुपये भेजे थे । पर फिर महाराजिन का कोई समाचार उन्हें नहीं मिला । यदि वह लिखती तो वे अवश्य ही उसको रुपये भेज देते परन्तु महाराजिन ने फिर उनके पास कोई पत्र भी नहीं लिखा । × ×

प्रातः उठे ही थे कि प्रेमलता आ गई । उससे मालूम हुआ कि महाराजिन फिर उनके यहां आ गई । निशीथ ने उसे घर में रख लिया है । इसीलिए प्रेमलता चली आई है । प्रेमलता को उन्होंने समझाना चाहा था पर परिस्थितियां ऐसी थी कि वे निशीथ को निष्कलंक प्रमाणित कैसे कर सकते थे ? वे चुप रहे । × × ×

और आज उसने आत्महत्या कर ली । × × ×

डाक्टर शिवाधार उसी प्रकार पड़े रहे । कमरे की बिजली का बल्ब जल कर बाहर के अन्धकार को मिटा रहा था । डाक्टर शिवाधार की विचारधारा चल रही थी; कमरे की नीरवता को भंग करने के लिए घड़ी टिक-टिक कर रही थी ।



[ १९ ]

प्रातःकाल निशीथ को नींद आ गई थी। प्रेमलता उठी तो उसके कमरे में आई, देखा, निशीथ सो रहा था; उसके मस्तक पर आज निश्चिन्तता की रेखायें देख कर प्रेमलता को आनन्द का अनुभव सा हुआ। वह क्षण भर रुक कर उसे देखने लगी तभी पहाड़ी नौकर ने आकर कहा—डाक्टर साहब के यहाँ से एक आदमी आया है।

प्रेमलता को आश्चर्य हुआ। इस समय क्या आवश्यकता पड़ी जो पिता जी ने आदमी भेजा है? वह बाहर आई तो नौकर ने एक पत्र उसके हाथ पर रख दिया। प्रेमलता के नाम वह पत्र था। खोल कर वह पढ़ने लगी तो उसका चित्त जाने कैसे होने लगा।

मेरी प्रिय प्रेम,

कल की घटनाओं ने मुझे विक्षिप्त बना दिया है, जितना ही सोचता हूँ उतना ही पागल सा हुआ जा रहा हूँ। पता नहीं क्यों आज मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरे समान पापी शायद संसार में दूसरा न होगा। मनुष्य एक पाप करता है, उसे छिपाने के प्रयत्न में उसे अनेक पातक करने पड़ते हैं। यही हालत इस समय मेरी भी हुई है। मैंने प्रमाद में एक पाप किया था; उस पाप को अब तक मैं छिपाता ही रहा। उसका परिणाम यह हुआ कि उस पाप का विस्तार ही होता गया। महाराजिन का वह बच्चा तुम्हारा भाई है यदि यही मैं पहले स्वीकार कर लेता तो शायद आज मुझे इतनी व्यथा न सहनी पड़ती। पर नहीं मुझे अभी अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए शायद बहुत कुछ सहना होगा, बहुत कुछ भोगना होगा।

उस दिन जब तुम आई थी तब भी मैंने कहा था कि तुमने निशीथ को समझने में भूल की है। तुम्हारे दाम्पत्य जीवन को बिखरते देख पिता का हृदय विचलित हो उठा था, पर समाज तथा अपमान के भय के कारण मैं तुम्हारे सम्मुख अपना पाप स्वीकार न कर सका। काश, उस दिन ही मैंने स्वीकार कर लिया होता ! पर अब बीत गई बातों पर विचार करने से कोई लाभ नहीं है। जो बात बीत गई सो बीत गई।

और अब महाराजिन ने आत्म-हत्या कर ली; वह भी मेरे पापों के कारण ! अपने पुत्री के दाम्पत्य जीवन के लिये जो त्याग मैं नहीं कर सका उसे ही उस स्त्री ने बहुत अधिक त्याग करके किया।

तो, अब मेरा हृदय व्यथा से भर उठा है। अधिक सहने की शक्ति जैसे अब इस हृदय में शेष नहीं रह गई। इसलिये अब अधिक अबसर मैं नहीं देना चाहता ! मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं अब इस समाज से इतनी दूर चला जाऊँगा जहाँ किसी की पहुँच न हो। जीवन के शेष वर्ष उस पवित्र नारी की याद को अपने हृदय के कोने में छिपाकर व्यतीत करूँगा। अपनी सारी सम्पत्ति की वसीयत मैंने कर दी है। वसीयत तुम्हें विपिन चन्द्र सिनहा से प्राप्त हो जायगी। मैंने अपनी आधी सम्पत्ति महाराजिन के इस बच्चे के नाम लिख दी है, आधी जाग्रत-नारी-संघ को। मेरी इच्छा है कि महाराजिन की स्मृति में नारी-संघ ऐसी उपेक्षिताओं के जीवन-यापन का प्रबन्ध करें !

बस, तुमसे अधिक कुछ कहना मुझे नहीं है। बच्चा यह, तुम्हारा भाई है उसके भविष्य को मैं तुम्हारे ही हाथों छोड़ जाता हूँ, जानता हूँ, मुझसे अधिक तुम उसका ध्यान रखोगी।

तुम्हारा पिता—

शिवाधार

एक ही साँस में प्रेमलता सम्पूर्ण पत्र पढ़ गई, फिर उसने नौकर से पूछा—पिता जी घर पर हैं।



‘जी नहीं रात ही वे कहीं चले गये, कहा था यह पत्र प्रातःकाल पहुँचा देना ।’ नौकर ने उत्तर दिया ।

प्रेमलता दौड़कर निशीथ के कमरे में गई, जगाकर उसने उसके हाथ में डाक्टर शिवाधार का पत्र रख दिया ।

निशीथ ने पढ़ा और फिर विचार में मग्न हो गया ।

